आचार्य-नवलकिशोर-काङ्करस्य

पत्र-साहित्यम्



सम्पादिका

कुमारी शिवाङ्गना शर्मा

एम. ए.



आचार्यप्रवर-
विद्यावाचस्पति-गद्यसम्राट्-कविशिरोमणि-
महामहिमोपाध्याय-

श्रीनवलकिशोर-काङ्करस्य

जनवरी १९३२ तः जून १९८९ पर्यन्तं
कतिचनसंस्कृतपत्रसङ्ग्रहात्मकं

पत्र-साहित्यम्



सम्पादिका एवं टिप्पणी-लेखिका

कुमारी शिवाङ्गना शर्मा एम. ए.

शोध-छात्रा, राजस्थान-विश्वविद्यालयस्य



प्रकाशक

राम शर्मा

विद्यावैभव-भवन, जयपुर

पुस्तक-प्राप्ति-स्थानं

रमेश बुक डिपो	राम शर्मा काङ्कर
त्रिपोलिया बाजार	विद्या-वैभव-भवन
जयपुर-२	सुमेरुकर्णमार्ग
	रामगञ्ज, जयपुर-३





मुद्रकः
श्री शङ्कर आर्ट प्रिण्टर्स, जयपुर-२



मूल्य ४०) रुपये

सम्पादकीय

काव्यलेखन की तरह पत्रलेखन भी एक प्रकार की कला ही है। इस कला के अभाव में अनेक व्यक्ति अपने हृदय के वास्तविक उद्गारों को समुचित रूप से दूसरे तक नहीं पहुँचा पाते, जिससे कभी कभी परस्पर मनोमालिन्य भी हो जाता है या वे मिथ्याभ्रान्ति के लक्ष्य हो जाते हैं। व्यक्तिगत पत्र तो लेखक के व्यक्तित्व को सब के सामने स्पष्टरूप से प्रकट करने वाले हुआ करते हैं। अत एव अनेक साहित्यकारों ने काव्य-निबन्धादि से अपने हृदयोद्गार प्रकट न करके पत्रलेखन के माध्यम का आश्रय लिया है। यह पत्रलेखन-क्रिया केवल लेखक के व्यक्तित्व की ही परिचायिका नहीं है प्रत्युत उसके कृतित्व के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए भी नितान्त अपेक्षित है।

यह साम्प्रतिक पत्रलेखन-पद्धति अवश्य इस युग की देन है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में पत्र लिखे ही नहीं जाते थे। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड (भागवत माहात्म्य) में देश-देश में वैष्णवों के पास पत्र भेजने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी तरह व्यास-लिखित अन्य ग्रन्थों में भी पत्रों की चर्चा मिलती है। अभी चित्रपट (टी०वी०) में दिखाये गये महाभारत में रुक्मिणी के द्वारा कृष्ण को लिखा हुआ पत्र भी सबने देखा ही है।

एतदनन्तर संस्कृत के नाटक, चम्पू, गद्य-काव्यादि में पत्र प्राप्त होते हैं। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक में विदिशाधिपति अग्निमित्र के पास सेनापति पुष्पमित्र द्वारा भेजे हुए पत्र का प्रसङ्ग इस तरह मिलता है—

"स्वस्ति। यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात् परिष्वज्येदमनुदर्शयति ... " इत्यादि

(मालविकाग्निमित्र पञ्चमाङ्क) । कालिदास के एक अन्य नाटक अभिज्ञान-शाकुन्तल में भी पत्रलेखन का उल्लेख है। प्रियंवदा और अनसूया के अनुरोध पर शकुन्तला ने लेखन-सामग्री के अभाव में कमलपत्र पर पद्यात्मक पत्र लिखकर दुष्यन्त को अपनी कामजनित मनोव्यथा इस तरह प्रकट की है—

"तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि ।
निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्त–मनोरथान्यङ्गानि ।।

(अभि० शा० तृतीयाङ्क)

विक्रमोर्वशीय नाटक में भी कालिदास ने पत्रलेखन प्रस्तुत किया है। उर्वशी एक भूर्जपत्र पर अपनी मदनपरवशता का परिचायक लेख सम्पादित करके राजा पुरुरवा के समीप में डाल देती है और राजा अपने मित्र विदूषक को वह पत्र पढ़कर सुनाता है—

"स्वामिन् संभाविता यथाहं त्वयाऽज्ञाता
तथानुरक्तस्य यदि नाम तवोपरि अहम् ।
किं मे ललित-पारिजातशयनीये भवन्ति
नन्दनवनवाता अप्यत्युष्णकाः शरीरके ।।"

(विक्रमोर्वशीय, द्वितीयाङ्क)

बाणभट्ट की कादम्बरी में भी मदनाभिभूता महाश्वेता के पास पत्र भेजा गया था। यह पत्र ऋषिकुमार पुण्डरीक ने तमालतरु के पल्लवों का रस शिला पर निचोडकर एवम् अपने परिधान-वल्कल में से एक टुकड़ा फाडकर कनिष्ठिकाङ्गुलि की नख की नोक से लिखकर महाश्वेता के पास भिजवाया था—

"दूरं मुक्तालतया बिस-सितया विप्रलोभ्यमानो मे ।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः ।।"

(कादम्बरी पूर्वभाग)

इसी प्रकार दशकुमार-कार दण्डी ने राजकुमार राजवाहन के पास

राजकुमारी अवन्तीसुन्दरी द्वारा यह पत्र लिखवाकर भिजवाया था—

"सुभग, कुसुमसुकुमारं जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम् ।
मम मानसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम् ॥"

इस तरह संस्कृत के काव्य-नाटकादि में नायक-नायिकाओं द्वारा लिखे हुए पद्य मिलते हैं जो पत्र के रूप में ही हैं, किन्तु इनमें साम्प्रतिक पत्रलेखन का स्वरूप प्राप्त नहीं होता । ये पत्र आत्मीय बन्धुजन या मित्र-वर्ग के प्रति प्रकटित हार्दिक भावाभिव्यक्ति के सहज साधन न होकर केवल नायक-नायिकादि के पारस्परिक वार्तालाप के एक साधनमात्र हैं ।

आधुनिक पद्धति से व्यक्तिगतपत्रों का लेखन-प्रकार तो बहुत समय के पश्चात् चालू हुआ प्रतीत होता है, जो अब तक क्रमशः संस्कृत-क्षेत्र में चला आ रहा है ।

यह प्रारंभ में ही मैं लिख चुकी हूँ कि वैयक्तिक पत्र केवल लेखक के व्यक्तित्व की जानकारी के लिए ही उपादेय नहीं, प्रत्युत उसके कृतित्व के अध्ययन के हेतु भी सङ्ग्राह्य हैं । राजस्थान-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष पूज्य गुरुवर डा० श्री हरिरामजी आचार्य के आदेशानुसार उन्हीं के निर्देशन में मुझे पी-एच. डी. की उपाधि के लिए राष्ट्रपति से पुरस्कृत "म० म० आचार्य श्री नवलकिशोर काङ्कर का व्यक्तित्व एवम् उनकी रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर शोध प्रबन्ध लिखने का सौभाग्य मिला । अतः इसी सन्दर्भ में मुझे आचार्य काङ्कर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अध्ययनार्थ उनके द्वारा संस्कृत में लिखित पत्रों की भी आवश्यकता पड़ी, जिसके लिए मैंने उनके पत्र सङ्गृहीत किये । इनमें अनेक पत्र तो इनकी पुस्तकों में, पुस्तिकाओं में, क्रोडपत्रों में, यहाँ तक कि लिफाफों के कवर तक पर भी छिन्न-भिन्न रूप में लिखे हुए मिले, जिनमें कई पत्र विना तारीख व पते के भी थे । इसके अतिरिक्त उनके परिचित लोगों को पत्र लिख-लिखकर भी पत्र एकत्र किए गए, परन्तु ऐसे पत्र स्वल्प संख्या में ही आए । कितने ही महानुभाव तो न जाने किस षड्यन्त्र की विभीषिका से संशयालु बने हुए हाँ-हाँ ही लिखते रहे और करते रहे किन्तु आज तक पत्र नहीं भेजे । तथापि मेरे पास करीब 150

पत्र एकत्र हो गये जिनमें मैंने ८५ पत्र ही अपने अध्ययनार्थ चुने हैं। अन्य पत्र अपूर्ण, अस्पष्ट या एक ही व्यक्ति को लिखे हुए अनेक पत्र होने के कारण मैंने उनकी विशेष उपादेयता नहीं समझी।

इनके अतिरिक्त भी डा० वी० राघवन मद्रास, सौ० क्षमादेवीराव बम्बई, डा० मंगलदेव शास्त्री वाराणसी, म० म० परमेश्वरानन्द शास्त्री दिल्ली, डा० रामकृष्ण भट्ट एम. ए. बंगलौर, डा० महालिङ्ग शास्त्री मायावरम्, डा० श्रीसत्यव्रत शास्त्री दिल्ली, सुश्री निर्मलाकुमारी बम्बई, डा० बहादुरचन्द्र शास्त्री दिल्ली, डा० रुद्रदेव त्रिपाठी दिल्ली, श्रीनित्यानन्द शास्त्री जोधपुर, डा० शशिधर शास्त्री चण्डीगढ़, डा० सत्यदेव वर्मा अमृतसर, डा. विश्वनाथ शास्त्री खन्ना, डा. जगन्नाथ वेदालङ्कार पाण्डीचेरी, प्रो० वराड पाण्डे नागपुर, म०म० दामोदर सातवलेकर पारडी, डा० के.रा. जोशी नागपुर, भगवद्दत्त वेदालङ्कार हरिद्वार आदि करीब पचास व्यक्तियों के पत्र या पत्रांश भी मिले। किन्तु आचार्य काङ्कर द्वारा उनके पास भेजे हुए पत्रों की पूरी प्रतिलिपि आदि न मिलने से उन पर कोई विचार नहीं किया गया।

इनके अतिरिक्त म०म० पं० गोपीनाथ कविराज वाराणसी, म०म० पं० नारायणशास्त्री खिस्ते वाराणसी एवं म०म० के. एम. कृष्णमूर्ति शास्त्री मदुरई इन तीनों विद्वानों के पास भेजे हुए पत्रों की पोस्ट आफिस की रसीद भी प्राप्त हुई है, किन्तु पत्रों में लिखित साहित्य नहीं मिला।

इनके पास अन्य विद्वानों द्वारा भेजे हुए अनेक पत्रों पर यही लिखा मिला है— उत्तरितम्, पद्यबद्धमुत्तरं प्रेषितम्, एतदनुरोधो न स्वीकृतः, अस्य प्रस्तावो न्यक्कृतः—इत्यादि।

अस्तु। इन पत्रों के माध्यम से आचार्य काङ्कर की लेखनशैली के अध्ययन के साथ ही उनके जीवन-दर्शन के भी वास्तविक स्वरूप तक पहुँचा जा सकता है। इतना ही नहीं इनके अध्ययन से इनकी वर्तमान और प्राक्कालिक जीवनपद्धति, निर्धनता से संघर्ष की स्थिति, वेदाध्ययन की रुचि, स्वाभिमानता, स्पष्टवादिता, देशभक्ति, सामाजिक सेवा,

सहानुभूति, समवेदना, संस्कृतभाषा के प्रचार-प्रसार की प्रचुर अभिलाषा आदि का भी उज्ज्वल रूप सबके सामने आ जाता है।

सब पत्रों का सङ्ग्रह हो जाने पर दिनाङ्कानुसार ही इनका क्रम रखना उचित प्रतीत हुआ, क्योंकि इससे लेखक की लेखन-शैली के क्रमिक विकास का एवं भावाभिव्यक्ति की पद्धति का अध्ययन करने में परम सौकर्य हो जाता है। साथ ही जो पत्र जैसी स्थिति में और जिस रूप में प्राप्त हुआ उसको मैंने उसी रूप में प्रकाशित करना अच्छा माना है। हो सकता है, ऐसी अवस्था में यत्र-तत्र अशुद्ध प्रयोग भी मिल जायँ किन्तु उनमें परिवर्तन करने से कृतित्व का वास्तविक अध्ययन नहीं किया जा सकता। एतदर्थ मैं आचार्य काङ्कर से क्षमा चाहती हूँ।

इन पत्रों के अध्ययन से यह भी ज्ञात हो सका है कि आचार्य काङ्कर की यत्र तत्र कठिन शब्दों के प्रयोग करने की जो सहज प्रवृत्ति वर्तमान में दृष्टिगत हो रही है वह इनके स्वभाव में प्रारम्भ से ही चली आ रही है। इनके किये हुए कठिन शब्दों के कतिपय प्रयोग तो विना मस्तिष्क-व्यायाम के सर्वथा दुरवबोध बने रहते हैं। अतः मैंने गुरुजनों की सहायता से कठिन शब्दों का सरलार्थ टिप्पणी में दे दिया है।

इस प्रकार इनका सङ्कलन एवं सम्पादन करके इनका प्रकाशन करना भी मैंने उचित जाना जो गुरुकृपा से सहज ही सम्पन्न होगया।

इस पत्रसाहित्य के सङ्ग्रह करने का अवसर उपस्थित करने का श्रेय तो मेरे शोधप्रबन्ध के पथप्रदर्शक राजस्थानविश्वविद्यालय के संस्कृत-विभागाध्यक्ष श्रद्धास्पद गुरुवर्य पितृतुल्य डा० श्री हरिरामजी आचार्य को ही है। उनके आशीर्वाद-संवलित प्रोत्साहन से ही यह सब कुछ हो सका है। अतः कृतज्ञता-ज्ञापनार्थ उनके संमुख नतमस्तक होने के अतिरिक्त मेरे पास अन्य कोई साधन या शब्द-समवाय नहीं है। मैं सदा इनकी ऋणी रहूँगी। बच्चा पिता के आगे इससे अधिक कर भी क्या सकता है ?

आचार्य श्री काङ्कर के ज्येष्ठ तनय सुविदित-नामधेय श्रद्धेय डा० नारायणशास्त्रीजी काङ्कर के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ?

इनके ही पूर्ण सहयोग से ये पत्र एकत्र किये जा सके हैं तथा इनका चयन एवं सम्पादन हो सका है। यह सब इन्हीं के सहयोग का मूर्त्तरूप है। मैं तो इस पत्र-साहित्य के सम्पादन एवं टिप्पणी-लेखन का केवल उतना ही अधिकार रखती हूँ, जितना साङ्ख्यदर्शन के सिद्धान्त में बुद्धितत्त्व के क्रियाकलापों का आत्मा अधिकार रखती है।

मुझे आशा है, इस पत्रसाहित्य से मेरी तरह अन्य साहित्यप्रेमी बन्धु भी लाभ प्राप्त करेंगे। इस कार्य में जहाँ कहीं भी त्रुटियाँ रह गयी हों, उनके लिए विद्वज्जन अवश्य मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि यह मेरा प्रथम कार्य ही है।

भाभा पब्लिक स्कूल
गंगाबक्ष जोशीमार्ग,
गलतारोड, जयपुर–3

अनुसन्धित्सु छात्रा
कु० शिवाङ्गना शर्मा,
एम.ए.

पत्र-तालिका

क्रमाङ्क	जिनको पत्र भेजे गये	स्थान	पृष्ठ
१.	गोस्वामी श्रीहरिकृष्ण भट्ट	महापुरा ग्राम	१
२.	श्रीधरशर्मा चतुर्वेदी	कोटा	२
३.	श्रीशालिग्राम शास्त्री	लखनऊ	३
४.	आशुकवि हरिनारायणजी शास्त्री	जयपुर	५
५.	पं. श्रीपादजी शास्त्री	इन्दोर	७
६.	प्रोफे० श्रीआद्यादत्त ठक्कुर	लखनऊ	८
७.	श्रीसत्यानन्दमिश्र काव्यतीर्थं	मलारनाडूंगर	९
८.	श्रीधरशर्मा चतुर्वेदी	कोटा	१०
९.	म० म० श्रीमधुसूदनजी ओझा	जयपुर	११
१०.	रा० वै० श्रीनन्दकिशोरजी शर्मा	जयपुर	१२
११.	श्रीमोतीलाल शास्त्री	जयपुर	१३
१२.	श्रीमोतीलाल शास्त्री	जयपुर	१४
१३.	म० म० श्रीमधुसूदनजी ओझा	जयपुर	१५
१४.	श्रीमान् जावली सरदार	अलवर	१७
१५.	वैद्य-श्रीधरशर्मा चतुर्वेदी	कोटा	१८
१६.	पं० पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी	अजमेर	१९
१७.	वैद्य श्रीधरशर्मा चतुर्वेदी	कोटा	२०
१८.	पं० श्रीपातीराम शास्त्री	हरिद्वार	२१
१९.	पं० श्रीछज्जूरामजी शास्त्री	दिल्ली	२२
२०.	श्रीमती सौ० लीलादेवी दयाल	बम्बई	२३
२१.	पं० श्रीदीनानाथ शास्त्री सारस्वत	नयीदिल्ली	२४
२२.	स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी	अहमदाबाद	२४
२३.	पं० श्रीगिरिधारीलाल व्यास	उदयपुर	२६
२४.	पं० श्रीकेदारनाथ सारस्वत	हृषीकेश	२७
२५.	पं० श्रीपुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी	रामनगर	२८
२६.	डा० श्रीचन्द्रशेखरशर्मा एम. ए.	कोटा	३०
२७.	पं. श्री पी. एन. पट्टाभिरामशास्त्री	मद्रास	३१

क्रमाङ्क जिनको पत्र भेजे गये	स्थान	पृष्ठ
२८. डा० श्रीरामजी उपाध्याय	सागर	३२
२९. डा० श्रीरामजी उपाध्याय	सागर	३३
३०. पं० श्रीलक्ष्मीलालजी जोशी	अजमेर	३४
३१. श्रीमूलचन्द्रशर्मा एम. ए.	अलवर	३५
३२. म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्य	मुजफ्फरनगर	३६
३३. श्रीजयन्तकृष्ण ह० दवे	बम्बई	३७
३४. डा० माधव श्रीहरि अणे	नयीदिल्ली	३९
३५. डा० श्रीसुधीरकुमारजी गुप्त	जयपुर	४१
३६. डा० श्रीसुधीरकुमारजी गुप्त	जयपुर	४४
३७. म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्य	गौंडा	४६
३८. पं० श्रीजगदीशजी साहित्याचार्य	जयपुर	४८
३९. म० म० स्वामी श्रीमाधवानन्दजी	नयीदिल्ली	५१
४०. म० म० स्वामी श्रीमाधवानन्दजी	नयीदिल्ली	५२
४१. म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्य	वाराणसी	५३
४२. म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्य	वाराणसी	५४
४३. श्रीअमरनाथ झा	मधुवनी	५६
४४. म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्य	वाराणसी	५७
४५. आचार्य पं. श्रीभाईशङ्कर पुरोहित	बम्बई	५८
४६. डा० श्रीशिवदत्तचतुर्वेदी एम. ए.	वाराणसी	६०
४७. पं. श्रीभगवत्प्रसादजी मिश्र	वाराणसी	६१
४८. डा० श्रीभोलाशङ्कर व्यास	वाराणसी	६३
४९. पं० श्रीभगवत्प्रसादजी मिश्र	कलकत्ता	६४
५०. आचार्य श्रीभाईशङ्कर पुरोहित	बम्बई	६६
५१. श्रीपिनाकपाणि शास्त्री एम. ए.	कुरुक्षेत्र	६७
५२. पं० श्रीगणेशरामशर्मा विद्याभूषण	डूँगरपुर	६८
५३. पं० श्रीगोविन्द नरहरि वैजापुरकर	वाराणसी	६९
५४. डा० श्रीविद्यानिवास मिश्र	वाराणसी	७०
५५. श्रीबटुकनाथशास्त्री खिस्ते	वाराणसी	७१
५६. आचार्य डा० श्रीबलदेव उपाध्याय	वाराणसी	७२
५७. पं० श्रीकालीप्रसादजी शुक्ल	वाराणसी	७३
५८. डा० श्रीगोपालचन्द्र मिश्र	वाराणसी	७४
५९. डा. श्री आर.एन. दाण्डेकर शास्त्री	पूना	७५
६०. योगिराज श्रीनरहरिनाथजी शास्त्री	नैपाल	७६

क्रमाङ्क जिनको पत्र भेजे गये	स्थान	पृष्ठ
६१. आचार्य पं० श्री खड्गनाथ मिश्र	जयपुर	७७
६२. पं० श्रीराजेश्वरशास्त्री द्राविड	वाराणसी	७८
६३. पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री एम. ए.	बीकानेर	८०
६४. स्वा. गोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य	नयीदिल्ली	८१
६५. आचार्य पं. श्रीयुधिष्ठिर मीमांसक	बहालगढ	८२
६६. स्वा. श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज	अहमदाबाद	८३
६७. कु० श्रीमती सीता हरलालका	बम्बई	८४
६८. डा० श्रीविष्णुशर्मा शास्त्री एम.ए.	नयीदिल्ली	८५
६९. डा० श्रीप्रभाकर शास्त्री एम. ए,	जयपुर	८६
७०. पं. रासविहारीलालजी गोस्वामी	वृन्दावन	८७
७१. स्वा. श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज	नासिक	८९
७२. स्वा. श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज	बम्बई	९१
७३. कु० सुवर्णा वेदशक्ति एम. ए.	नासिक	९२
७४. महन्त मुरलीमनोहरशरणजी शास्त्री	उदयपुर	९३
७५. आचार्य पं० श्रीबदरीनाथ शुक्ल	वाराणसी	९४
७६. सुश्री वेदशक्ति सुवर्णकान्ता एम. ए.	नासिक	९५
७७. स्वा० गोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य	नासिक	९६
७८. स्वा० गोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य	नासिक	९८
७९. डा० श्रीरामकृष्णशर्मा एम. ए.	नयी दिल्ली	१००
८०. स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती	वृन्दावन	१०२
८१. आचार्य पं. श्रीउमेशशास्त्री एम.ए.	जयपुर	१०४
८२. डा० श्रीमनोहरलाल द्विवेदी	वाराणसी	१०६
८३. डा० श्रीमण्डनमिश्र मीमांसाचार्य	नयी दिल्ली	१०७
८४. डा० श्रीराकेशशास्त्री एम. ए.	बांसवाड़ा	१०८
८५. डा० श्रीमण्डनमिश्र मीमांसाचार्य	नयी दिल्ली	११०

—०—

आचार्य-श्रीनवलकिशोर-काङ्करस्य पत्र-साहित्यम्

रामगञ्ज; जयपुरम्
ता० १०-१-३२

स्वस्ति श्रीहरिकृष्णभट्ट-सुहृदे गोस्वामिने वाग्मिने
कालो मेऽत्र सखेऽगमद् बहुतिथः पत्र-प्रतीक्षावतः ।
हेतुस्त्वत्र विशेष एव गुरुतां यातो दरीदृश्यते
तच्छीघ्रं कुशलं स्वकीयमधुना संलिख्य मां मोदयेः ।। १ ।।

आत्मीयां किमहं लिखानि हि कथां चेतोव्यथा-सम्भृतां
वर्त्तेते पितरौ न मे निजकुले न भ्रातरौ सोदरौ[1] ।
तच्छास्त्राध्ययनं, सुखेन शयनं, मित्रैः समं भोजनं
सर्वं नष्टमिवास्ति सम्प्रति सखे घस्रा[2] हि ते मे गताः ।। २ ।।

जाने स्वोदरपूरणाय न सखे ! मे, जीविकोपार्जनं
नित्यं मां जनकर्ण[3]-भारमृगराडप्युद्यतः खादितुम् ।
अद्यैव क्षितिसाद् भवेत् तृणमिव प्राक्कालिकं मे गृहं
स्फारास्या सुरसेव दुःस्थितिरियं मामत्तु[4]मस्त्युत्सुका ।। ३ ।।

आत्मीयोऽसि सतीर्थ्य-सर्वसुहृदां विश्वासयोग्योऽसि च
तेनेदं निजजीवनेऽत्र पतितं कष्टं दलेऽलेखिषम् ।
मा भूश्चिन्तित आत्मचेतसि सखे ! मे दुःखतस्त्वं मनाक्
सर्वा क्ष्मा[5] सुखदुःखयोः सुविशदा नृत्यस्थली वर्त्तते ।। ४ ।।

काव्यतीर्थपरीक्षां तु दित्सुरस्मि सखे ! मम ।
येनाध्यापकतां लब्ध्वा कुत्रापि धनमाप्नुयाम् ।।५।।

एवमेव परन्त्वत्र स्मरणीयोऽस्मि पूर्ववत् ।
कृच्छ्रेऽपि समये सत्य-सुहृदेव सहानुगः ।।६।।

सुहृत् प्रवीणचन्द्रस्तु पठनेऽनारतं रतः ।
यदा कदा समं तेन मेलनं जायते मम ।।७।।

इत्थं विलिख्य पत्रं हि मनो लघु विधाय च ।
सुखश्वासं गृहीत्वाऽयं विरमति भवत्सुहृत् ।।८।।

गोस्वामी श्री हरिकृष्ण भट्ट — **नवलकिशोर शर्मा गौडः**

महापुरा ग्राम, अजमेर रोड ११ मील पर (जयपुर)

1. सहोदरौ, 2. दिवसाः, 3. जनक + ऋण—इति पदच्छेदः, 4. भक्षितुम् 5. पृथ्वी

२

रामगञ्जः, जयपुरम्
ता० ४–६–३२

प्रेम्णा श्रीधरकाव्यतीर्थमनघं[1] मित्रं प्रणम्य स्वकं
एष श्रीनवलः सुहृत् स्वकुशलोदन्तां[2] ल्लिखत्यग्रतः ।
श्रीमद्दक्षिणकालिकाङ्घ्रिकृपया श्रेयोऽत्र मे विद्यते
तत्रैतद् भवतोऽपि सा भगवती भद्रं भृशं वर्धयेत् ।। १ ।।

सखिवर ! भवता प्रहिता दलिका[3] माधुर्यगुणाञ्चिता चापि ।
हृदि धृता मोदयति मां पितृगृहादागता दयितेव ।। २ ।।

लक्ष्मी-प्राप्तिशुभप्रयोग इह मे भाग्याद्गतो व्यर्थतां
नाभून्मोमनभट्टकै[4]रपि ममालङ्कारिकैर्मेलनम् ।
मान्याः श्रीहरिशास्त्रिणोऽपि न गताः काशीं, न चाहं गतः
सर्वं पूर्व-विचारितं समनशत् सार्धं रिपूपद्रवैः ।। ३ ।।

बैरङ्पत्रमिहागतञ्च भवतः पत्नी-पितुर्गेहतो
लब्धं तच्च मयाऽत्र रक्षितमिदं मत्तो भवान् प्राप्नुतात् ।
अन्यत् किं बहुलं लिखानि, सुखतां वर्त्ते भवान् वर्त्ततां
शेषञ्चैहिकमेत्य वृत्तमखिलं शीघ्रं मया बुध्यताम् ।। ४ ।।

भवज्जननकपाद – श्रीरामवल्लभ – शास्त्रिणे[5] ।
मदीया नतयोऽनन्ताः सन्तु सादरमर्पिताः ।। ५ ।।
इदमितिवृत्तकपत्रं ज्येष्ठामायां शनैश्चरे दिवसे ।
लिखितं श्रीधरसुहृदः प्रीत्यै श्रीनवलकिशोरेण ।। ६ ।।

श्रीधर शर्मा चतुर्वेदी, काव्यतीर्थ
C/o श्रीरामवल्लभजी चतुर्वेदी
प्रिंसीपल
बिट्ठलनाथ-संस्कृतपाठशाला, कोटा

भवन्मित्रं
नवलकिशोरकाङ्करो गौडः

---

1. निष्पापं, छलकपटरहितम् 2. वृत्तान्तान्, समाचारान् 3. पत्रिका = चिट्ठी
4. एतन्नामकैः सुहृद्भिः 5. विट्ठलनाथसंस्कृतमहाविद्यालयाध्यक्षाय ।

३

श्रीमधुसूदनग्रन्थमाला-कार्यालयः,
विद्याधर का रास्ता, जयपुर
ता० २०-११-३२

श्रीमन्मान्यान् साहित्य-सुधारससिक्त-हृदयान् पीयूषपाणीन् व्याकरण-साहित्यायुर्वेदाचार्यान् श्रीशालिग्रामशास्त्रिवर्यान् भूयो भूयो नमन्निवेदयति कश्चनायं साहित्याध्येता साधारणजनः ।

श्रद्धेयाः,

सम्प्रत्यहं काव्यतीर्थपरीक्षार्थं साहित्यदर्पणं पठन्नस्मि । एतदर्थं साहित्य-वेदान्ताचार्यान् परमपूजनीयान् श्रीविहारिलालशर्म-दाधीच-महाराजान् सेवमानोऽपि यदा कदा गुरुवर्याणां म० म० श्रीगिरिधरशर्म-चतुर्वेदिनामपि पार्श्वे उपस्थितो भवामि । अस्मिन् सन्दर्भे ते मामेकदाऽवादिषुः—"अस्मदभिन्न-सुहृद्भिः श्रीशालिग्रामशास्त्रिभिर्लिखिता साहित्य-दर्पणस्य हिन्दीटीकाऽपि परीक्षाकृते पठनीया" इति । अतोऽहं सानुरोधं सविनयञ्च श्रीमन्मान्यान् प्रार्थये यत् तत् पुस्तकं मयि कृपां विधायाल्प-मूल्येन अथवा पूर्णमूल्येन वी. पी. द्वारा पत्रोपरिभागे लिखिते सङ्केते प्रेषयितुं महान्तमनुग्रहं कुर्वन्तु श्रीमन्तः ।

विद्वद्वर्य्याः,

अनया प्रार्थनया सह सन्देहमेकं दूरीकर्त्तुमप्यहं श्रीमतः प्रार्थये । यतः श्रीमन्तः संलब्ध-यशोराशयः साहित्यदर्पणस्य मार्मिकपण्डिताष्टीका-काराश्च सन्ति । सेयं मम वास्तविकी पिपृच्छा[1] जिज्ञासा[2] च वर्त्तते, नात्रान्यथा विचारो मनसि करणीयः । सोऽयमस्ति सन्देहो मम—

(१) विश्वनाथेन रूढाया लक्षणाया येऽष्टौ भेदाः स्वीकृतास्तत्रास्या रूढिमूलकत्वेन व्यङ्ग्यस्य शून्यतया तद्भेदप्रपञ्चो निष्प्रयोजन एव

1. प्रष्टुमिच्छा 2. ज्ञातुमिच्छा

मे प्रतिभाति । प्राचीना आचार्यास्तु रूढाया: शुद्धा गौणीति भेदद्वयमपि न स्वीकुर्वन्ति । कोऽत्र श्रीमतां विचार: ?

(२) अथ ये विश्वनाथेन लक्षणाया अशीतिभेदा: प्रदर्शितास्तेषु कतिचन त्वसम्भविनः प्रतीयन्ते, कतिचन चमत्कारशून्यत्वेन निरर्थका एव च । लक्षणाया वस्तुतोऽर्थसम्बन्धत्वेन साक्षात्पदवाक्यगत-धर्मधर्मिगत-त्वादिकल्पनावत् जाति-गुण-क्रिया-द्रव्यादिगतत्वेनापि ईदृशनिरर्थकभेद-प्रकल्पनसम्भवाच्चैवाशीतिभेदानां वैयर्थ्यमेव मे दृष्टौ समायाति । अत एव सोऽयं भेदप्रपञ्चो मादृशानां परीक्षार्थिनां क्लेशवर्धनमात्रफलक एवेत्यहं मन्ये । स्वयं विश्वनाथोऽपि सर्वेषां भेदानामुदाहरणसङ्ग्रहकरणेऽसमर्थोऽभवत् । तोर्थपरीक्षायामीदृशाः प्रश्ना आयान्ति । अतोऽहमत्र परीक्षाकृते श्रीमतां विचारं ज्ञातुमुत्सुक: । यदि न भवेत् काचन समयहानिस्तर्हि समुचितेनोत्तरप्रदानेनानुगृह्णन्तु मां श्रीमन्त: ।

भवतामेव कश्चन—
नवलकिशोरशर्मा गौड:

वैद्यराज श्रीशालिग्रामजी शास्त्री एम.ए.
साहित्य-व्याकरण-आयुर्वेदाचार्य
श्रीमृत्युञ्जय-औषधालय,
लखनऊ (यू०पी०)

४

इन्दोरनगरात्
ता० १६-१-३३

(दोहा)

श्रीगुरुचरण-सरोजयोः, मम नतयो विलसन्तु ।
यात्रायामिह मे समे[1], कामाः सफलाः सन्तु ।।१।।

(चौपाई)

श्रीहरिरनिशं जयतु जगत्यां
वर्षयतु स मे स्फूर्त्ति मत्याम् ।
वितरतु काव्यकलां मेऽकम्पाम् ।
कृत्वा मयि विपुलामनुकम्पाम् ।।२।।

अहमिह गुरुवर ! कुशलं वर्त्ते
निपात्य शरीराभीलं[2] गर्त्ते ।।
श्वोऽत्र परीक्षाऽऽरब्धा भविता ।
भवदनुग्रह एव मामविता[3] ।।३।।

पठने श्रममिह भूरि वहामि
सायं समये बहिर्विचरामि ।।
वर्षति नित्यं त्विह जलधारा
चलति च वायोर्वीचिरपारा ।।४।।

इन्दोरमिदं मञ्जु निकामं
श्रान्तिर्यत्र हि याति विरामम् ।।
सुपथां शोभाऽऽमोदं सूते
मम हृदि पठन-क्लान्त्यभिभूते ।।५।।

एतत्कर्मणि याते विलयं
एता[4] नवलो भवतो निलयम्[5] ।
वृत्तं निखिलं तत्र भवन्तः
श्रोष्यन्त्यचिरादयि श्रीमन्तः ? ।।६।।

1. सर्वे, 2. कष्टम्, 3. रक्षिष्यति, 4. आगमिष्यति, 5. भवनम्

(दोहा)

सत्यानन्द-महोदयः, सवया[1] मम पठतोऽद्य ।
परिहासैः समयं वृथा, ऽगमयन्मनो विनोद्य ॥७॥

श्रीमधुसूदनमैथिल–प्रवरगुरुः स्मृतिमेति ।
भवतामपि च कृपाकणः, सततं हृदि समुदेति ॥८॥

मद्गेहे मम कुशलतां, कथमपि भवान् वदतात् ।
येनास्मत्स्मृति-पावके, मम गृहिणी न दहतात् ॥॥

पत्रे निबन्धस्य विलेखितुं तु
सुमङ्गलं पद्यमधोऽङ्कितं हि ।
नवं मयाऽत्रैव सुगुम्फितं, तत्
सम्प्रेषयामीति विलोकनीयम् ॥१०॥

निबन्धपत्रे लेखितुं मङ्गलाचरणपद्यम्--

येषां दार्शनिकाश्च शाब्दिकबुधाः[2] प्रोद्दण्डपाण्डित्यका-
श्चित्रे संलिखिता भवन्ति सदसि श्रुत्वाऽभिधानं क्षणात् ।
तेषां मान्य-परीक्षकार्यचरणानां छात्रशंकारिणी
दृष्टिर्मेऽत्र निबन्धने सुरगिरः कुर्यादलं मङ्गलम् ॥॥११॥

वशंवदः
नवलकिशोरशर्मा गौडः
(काव्यतीर्थपरीक्षार्थी)

कविभूषण, आशुकवि
श्रीहरिनारायणजी शास्त्री
गीजगढ के ठाकुरों का नोहरा
घाटदरवाजा, जयपुर (राजपू०)

---

१. वयस्यः, २. वैयाकरणाः,

५

सुमेरुकर्णमार्गः, रामगञ्जः
जयपुरम्
ता० १३-४-३३

श्रीमद्- होल्कर - राज्य - संस्कृत - महाविद्यालयाधीश्वरे
पाणिभ्यां प्रणतिं विधाय कुरुते सोऽयं जनः प्रार्थनाम् ।
दत्वाऽल्पं समयं हि लेख्यमखिलं पत्रोत्तरं श्रीमता
जीयात् प्राज्ञ ! भवान् कुटुम्बसहितो यावद् विधु-ब्रध्नकौ[1] ।।१।।

मान्यैसोशियसन्-प्रबन्धकवरैः श्रीकालिकातापुरा-
न्नाद्यापि प्रकटीकृतं फलमहो किं काव्यतीर्थस्य हि ।
चेत् तत् ख्यातिमितं[2] तदा तु कृपया मां सूचयन्तु द्रुतं
तेनैव प्रहिणोमि पत्रमपरं मत्स्थान-नामाङ्कितम् ।।२।।

नानोपाधि-विभूषितेष्वपि परां[3] कुर्वेऽपरां प्रार्थनां
कलकत्तागजटं कदा कथमथ स्थानात् कुतः प्राप्यते ।
मूल्यं चापि विलिख्य तस्य समनुग्राह्यो भवत्-किङ्करः
सोऽयं काङ्करगोत्रशालि-नवलः साहित्यतीर्थे स्थितः ।।३।।

सर्वेषु पाठशालीयविद्वत्कुलजनेषु मे ।
सश्रद्धं नतयः सन्तु भवद्भिर्विनिवेदिताः ।।४।।

होल्कर-संस्कृतवाणी-महाविद्यालय-कुलाधिपान् भवतः ।
प्रणमति पुनरपि नवलो वितरितुमुत्तरं दलस्याशु ।।५।।

नवलकिशोरशर्मा काङ्करः
(काव्यतीर्थ-परीक्षार्थी)

श्रीयुत श्रीपादजी शास्त्री
प्रिंसिपल, होल्कर संस्कृत महाविद्यालय, इन्दोर

1. सूर्यः चन्द्रश्च 2. प्रकाशितं जातम् 3. श्रेष्ठाम् ।

६

श्रीमधुसूदन-ग्रन्थमालाकार्यालयः,
(विद्याधर का रास्ता), जयपुरम्
ता० २-१-३४

श्रीमत्सु विपश्चिदपश्चिमेषु विद्वद्वरेषु तत्रभवत्सु प्रो० श्रीमदाद्यादत्त-ठक्कुरमहाभागेषु मे प्रणतयः।

समादरणीयाः,

श्रीमद्भिः सह पत्रव्यवहारस्यास्ति ममायमाद्यः समयः। पूजनीय-चरणारविन्दानां गुरुवर्य्य-श्रीमधुसूदनझा-महाभागानामादेशतोऽहं पत्रमिदं लिखामि। एषु दिनेष्वहमेतेषां सान्निध्य[1]मधिवसन्नेतन्निर्दिष्टदिशा क्रोडपत्राणि परिष्कुर्वन् तेषां प्रतिलिपिं करोमि निरुक्तञ्चैभ्यो नित्यं पठामि। एते मयि परमं स्निह्यन्ति। अस्तु।

इमे गुरुवर्या भवतः सानुरोधं सूचयन्ति यत् पुस्तकमुद्रणेऽसह्यो बहु-विलम्बो भवति। अन्तिमं प्रूफपत्रन्त्वत्रावश्यं प्रेषणीयमेव। इन्द्रविजयस्य मुद्रितेषु पृष्ठेषु त्वशुद्धीनां बाहुल्यं विद्यते। अतोऽग्रे तथा न भवेत्।

इदमपीमे श्रीमतः कथयन्ति यन्मासस्यास्याग्रिमे पक्षे भवतां पार्श्वे जयपुरात् पं० श्रीपुरुषोत्तमचतुर्वेदिनः साहित्याचार्यास्तत्र लखनऊनगरे गमिष्यन्ति। तत्रैते भवतां पार्श्वं एव स्थास्यन्ति मुद्रणव्यवस्थामपीमे द्रक्ष्यन्ति। श्रीदुलारेलालभार्गवमहोदयेन सहैतेषां परिचयं कारयेयुर्भवन्त इति। तत्रैव विश्वविद्यालये संस्कृतविभाग एव जयपुरीयाः श्रीबदरीनाथ-शास्त्रिणः एम.ए. अपि व्याख्यातारः सन्ति। तैरप्येते मिमिलिषन्ति[2]। अतः साऽपि व्यवस्था भवद्भिरेव करणीया।

अत्र श्रीश्रद्धेया गुरुवर्याः स्वस्थाः सन्ति, सहज-बन्धूंश्च भवतः शुभाशीर्वादैः सभाजयन्ति। शेषं कुशलम्।

प्रोफेसर श्री आद्यादत्तठक्कुर
एम.ए., काव्यतीर्थ
लखनऊविश्वविद्यालय, लखनऊ

भावत्को
नवलकिशोरशर्मा गौड़ः

1. उपान्वध्याङ्वसः — इति सूत्रेण द्वितीया। 2. मिल्धातोः सन्नन्तरूपं लटि।

७

जयपुरम्
ता० २-५-३४

सत्यानन्द सखे ! सतीर्थ्य ! विलसद्वैदुष्य ! सौख्यास्पद !
पत्रं प्राप्तमनेहसः सुमहतः श्रीमत्सुवर्णाङ्कितम् ।
ज्ञातं सर्वमुदन्त[1]जातमसमो मोदश्च लब्धो मया
तन्नैजं प्रहिणोम्यहं जयपुराद् युक्तं हि पत्रोत्तरम् ।।१।।

आदिष्टोऽस्मि मलारनाऽ[2]चलसुपायातुं भवद्भिर्हि यत्
किन्त्वस्मिन् विषये लिखाम्यवितथं[3] तद्ध्यानतो धार्यताम् ।
आसन्नप्रसवाऽधुनास्ति हृदयाध्यक्षा महेला[4] मम
तामायानि कथं विहाय निकषा मित्रं[5] ह्यतः क्षम्यताम् ।।२।।

अस्मिन्नेव सिते दले जयपुरे चास्मद्रमण्याः पितु-
र्ज्येष्ठस्यात्मसुतस्य वेदविधिना पाणिग्रहोऽप्यस्त्यतः ।
सत्यानन्दमहोदयाः सुविदितस्नेहोदयाः ! स्वाशयाः !
तत्तत्रैत्य कथं करोमि सहसा रुष्टां द्वितीयां[6] वृथा ।।३।।

वैद्य-श्रीधरकाव्यतीर्थ-सुहृदा कोटापुरात् प्रेषितं
पत्रं वृत्तमथापि हन्त ! न मया प्राप्तं महाकालतः[7] ।
पत्राणि प्रतिमासकं जयपुरान्न प्रेषितानीति न,
मेऽलं तेन विचिन्तितेन नितरां चित्तेन संस्थीयते ।।४।।

श्रीमतां सहधर्मिण्याः कोमले चरणद्वये ।
मदीयाः सफलाः सन्तु नतयो भवता कृताः ।।५।।

पत्रोत्तरं द्रुततरं देयमद्यैव पद्यकैः ।
यत्र स्याल्लिखिता नूनमत्रागमनतारिका ।।६।।

श्रीसत्यानन्दमिश्र काव्यतीर्थ
मलारना डूंगर, जि० सवाईमाधोपुर

भावत्कः सखा
नवलकिशोरगौडः

---

1. वृत्तान्तजातम् 2. मलारनाडूंगरग्रामम् 3. सत्यम् 4. स्त्री
5. मित्रमित्यत्र निकषायोगे द्वितीया 6. पत्नीम् 7. बहोः समयात्

८

जयपुरम्
ता० १०-८-३४

श्रीमन् ! श्रीधरशर्मन् ! शर्म्मा[1]ऽचिन्त्यं चिनोत्वचञ्चलितम् ।
अनुपलमिह मम कुशलं तनुते श्रीतारिणी सततम् ।।१।।

हिन्दीभाषाचार्यादपि विशेषयोग्यता-परीक्षायाम् ।
'ऐड्वांस' शुभ्रनाम्न्यां सफलोऽहं समबोभूवं[2] हि ।।२।।

श्रीमन्नरेन्द्रसिंहैः शिक्षासचिवैः स्वजोबनेरार्थम्[3] ।
आहूतोऽहं यातस्तेषामुपवने गते दिवसे ।।३।।

किन्तु स्थानं तदहं नाकरवं स्वीकृतं, यतो हि ।
तदुदन्तं हि समस्तं विलिखाम्यग्रे यथाकिञ्चित् ।।४।।

ग्रामे त्वस्मद्वासः कामं भविष्यत्युन्नतेर्विघ्नः ।
अपि च न मित्र त्रिंशद्रूप्येभ्योऽधिका धनप्राप्तिः ।।५।।

अन्यद्, भवदादीनां सन्त्यक्ष्यन्ते हन्त ! मुदां गोष्ठ्यः ।
अध्ययनेऽपि च सुमहान्नुपस्थास्यत्येव विघ्नोऽपि ।।६।।

भाग्यं मे विपरीतं, सन्दृश्यते सम्प्रति तु मे मित्र !
आयातेषु सुदिनेषु भविष्यन्ति हि स्वतः कार्याणि ।।७।।

यौष्माकीणं[4] पत्रं प्रापितं चतुर्वेदिनां चोके[5] तु ।
युष्मज्जननी-भगिनी[6] तत्र त्वां प्रतीक्षतेऽनुपलम् ।।८।।

तत्पतिरपि सस्नेहं स्मरति सदाऽऽत्र त्वदागमनम् ।
पठने चाप्यथ बाधा नौ भवतीत्यपि स्मरणीयम् ।।९।।

जयपुरमतोऽत्र सुहृदा भवताऽविलम्बमुपस्थातव्यं हि ।
भूयो भूयस्त्वेतत् साग्रहमपि वदाम्येव ।।१०।।

नवलकिशोरकाङ्करो गौडः

श्रीयुत श्रीधर शर्मा चतुर्वेदी
C/o प्रिंसीपल, विट्ठलनाथ संस्कृतपाठशाला, कोटा

1. सुखम् । 2. भूधातोर्यङ्लुकि लुङि । 3. जोबनेरग्राम-स्थित-हाईस्कूलकृते ।
4. 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' इति खञ् । 'तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ' इति युष्माकादेशश्च । 5. चोव्यों का चोक । 6. मातृष्वसा (मोसी) ।

९

राजगढ़ (अलवर)
ता. ८-२-३५

गुरुं विबुधमण्डली-मुकुटरत्न-विद्वद्वरं
महायुत – महोपदेशक-महार्घ्यवाचस्पतिम् ।
अयं नवलकाङ्करो लघुनि राजदुर्गे स्थितः
स्तवीति नतमस्तको गुरुपदारविन्दालिकः ॥१॥

श्रीमत्सु पूज्यपादेषु वेदविज्ञानमूर्त्तिषु ।
गुरुवर्य्येषु साष्टाङ्ग-प्रणामं विनिवेदये ॥२॥
श्रीमतां कृपया पूज्याः ! राजदुर्गाभिधे पुरे ।
प्रधानाध्यापकोऽभूवं स्ववर्ग्-विद्यालये त्विह ॥३॥
इदानीमहमेकाकी नाजिमातिथ्यमाप्नुवन् ।
तेषामेव गृहे प्रातः सायं भुञ्जे वसामि च ॥४॥
शीघ्रमेव ममावासो राजकीयेऽन्यसद्मनि ।
भविष्यति वदत्येवं श्रीमान् नाजिम्–महोदयः ॥५॥
एकोऽपि हन्त नास्त्यत्र प्रौढो विद्वानतो जनाः ।
विद्वद्भिरहिते देशे मन्यन्ते मां हि पण्डितम् ॥६॥
अध्यापकत्वमादृत्य यद्यप्यत्रागते मयि ।
अर्थ-सङ्कटकष्टं मे न स्थास्यति, परन्त्वहो ॥७॥
सेवायां श्रीमतां स्थित्वा वेदविद्या-सुधा-रसम् ।
न लप्स्येऽनारतमिति शोचं शोचं तुदाम्यहम् ॥८॥
त्यक्त्वाऽध्ययनमुत्कृष्टं ममात्रागमनान्मनाक् ।
मुदिता मानसे जाता भवन्तोऽपि न वेद्म्यहम् ॥९॥
.... ।
.... ॥१०॥
.... ।
.... ॥११॥
शिवरात्र्यवकाशेषु होलिकादिवसेषु वा ।
सेवायां श्रीमतामेत्य करिष्ये गुरुदर्शनम् ॥१२॥

चरणचञ्चरीकः
नवलकिशोरगौडः काङ्करः

समीक्षाचक्रवर्ती, म०म० श्रीमधुसूदनजी ओझा
विद्याधर का रास्ता, जयपुर

१०

संस्कृतपाठशाला,
राजगढ़
ता० १०-२-३५

श्रीमन्नन्दकिशोरार्यान् चिकित्सकशिखामणीन् ।
नमत्ययं सुहृत् कोऽपि मध्येराजगढं[1] स्थितः ॥१॥

अत्रत्यं जलवायुसेवनमलं[2] स्वास्थ्यप्रदं वर्त्तते
वासः शोभनकोष्ठकः सहृदयाः स्निह्यन्ति लोका मयि ।
क्षीणाम्यल्पतमेन मूल्यविधिना खाद्यानि वस्तून्यपि
नित्यं मे सह संमुदैव नितरां यान्त्यत्र घस्राः[3] सखे ॥२॥

कालश्चेद्धि मिलेद् भवन्तमधुना स्वल्पोऽपि मत्स्नेहत—,
स्तत्रत्यं विलिखत्वरं[4] हि कृपयोदन्तान् सुखावेदकान् ॥
स्मारं स्मार[5]महर्निशं ज़यपुरीयान् बन्धुवर्यान् यतो
नित्यं हि प्रतुदामि,[6]नास्ति विषयेऽस्मिन् संशयोऽप्यल्पकः ॥३॥

श्रीमन्नन्दकिशोर ! वैद्यमुकुटालङ्कार ! ! मित्रोत्तम ! ! !
नत्वाऽऽप्तं[7] सुहृदं वदत्यथ पुनर्दूरस्थितः काङ्करः ।
प्राप्तः शिक्षकतामवाप्य मनसो मोदस्त्विदं मद्गृहे
वृत्तं मे गृहिणीमनूद्य दलतः संसूचयेन्मां पुनः ॥४॥

आशिषः सन्तु शिशवे रामाय कोटिशो मम ।
प्रतिक्षणं भवत्पत्रमयमत्र प्रतीक्षते ॥५॥

नवलकिशोरगौडः काङ्करः

चिकित्सकचूडामणि
राजवैद्य श्रीनन्दकिशोरशर्मा
भिषगाचार्य, रामगञ्जबाजार, जयपुर

---

1. राजगढे 2. पर्याप्तम् 3. दिवसाः 4. अरं=शीघ्रम् 5. स्मृत्वा स्मृत्वा 6. कष्टमनुभवामि 7. विश्वसनीयम् ।

११

सं० पा० राजगढ़ (अलवर)
ता. १९–२–३५

मोतीलाल सतीर्थ्य ! सर्वसुहृदां धौरेय[1] ! वाच्यास्त्वया
पादाब्जेषु [2]गुरोर्मम प्रणतयः साष्टाङ्गपातं, पुनः ।
हेरम्बप्रभृतीन् सखीनपि सुखोदन्तं मदीयं वदेः,
वर्त्तेऽहं कुशलं त्वमप्यविकलं वर्त्तस्व पत्न्या सह ॥१॥

श्री म० म० गिरिधरवर्यान् ब्रूयाः सप्रणमनं ममोदन्तम् ।
कलयति कुशलं तत्र श्रीमत्स्नेह-संवर्धितो नवलः ॥२॥

कुटुम्बसहिताः सन्ति श्रीरामभद्रमैथिलाः[3] ।
सुखिनस्त्विति वृत्तं च कथयेः श्रीमतो गुरून् ॥३॥

शिक्षासमिति-सत्कार्यं सम्पाद्याशु समागतः ।
अलवराद् ह्य एवाहं जानीयादिति मे सुहृत् ॥४॥

पाठं पाठ[4]मथान्वहं शतपथग्रन्थस्य पाठं त्वया ।
नित्यं लिख्यत एव मित्र ! तदहं द्रक्ष्यामि तत्रैत्य[5] हि ॥
नान्यल्लेख्यमिहास्ति किन्तु समये वासन्तिकेऽस्मिन् सखे !
रोदं[6] रोदमिहान्वहं विरहिणा याप्यन्त एता निशाः ॥५॥

भावत्को
नवलकिशोरगौडः काङ्करः

श्री मोतीलाल शास्त्री
बालचन्द्रमुद्रणयन्त्रालय
किशनपोल बाजार, जयपुर

---

1. अग्रगण्य ! 2. श्रीमधुसूदनमैथिलानाम् । 3. एतन्नामकाः अलवरराज्य-राजगुरवः श्रीमधुसूदनमैथिलानां तु श्यालभद्राः । 4. पठित्वा पठित्वा, णमुल् प्रत्ययः । 5. तत्रागत्य 6. रुदित्वा रुदित्वा ।

१२

राजगढ़तः
ता० १७–३–३५

मोतीलाल ! प्रियतमसखे ! प्राप्तमद्य त्वदीयं
पत्रं स्नेहामृतरसकणैः सिक्तमत्यन्तमेव ।
सर्वं सौख्यं त्विह विचिनुमो यापयामश्च कालं
पुत्रौ भार्या ह्यहमपि सुहृत् ! त्वाऽ[1]निशं च स्मरामः ।।१।।

किन्त्वात्मीयोऽप्यधिकहृदयप्रेष्ठ ! नेदिष्ठ[2] गोष्ठ्यां
प्रातः सायं पठनसमये सन्मुदां वृद्धिकर्त्तः ! ।
स्मारं स्मारं प्रतिपलमहं हन्त ! नित्यं भवन्तं
सत्यं त्वेतत् सकलसमयो याप्यते कष्टतो हि ।।२।।

आगत्याहं जयपुरपुरादन्यकार्याण्यपास्य[3]
नित्यं होराद्वयमिह[4] भवद्भाष्य-हिन्दीं पठामि ।
कर्मण्यस्मिन् नवलसुहृदा वीतचित्तेन[5] भाव्यं
तन्मुद्राप्यं शतपथमथोद्दिश्य यत्सन्ततं हि ।।३।।

शेषं सर्वं कुशलमतुलं विद्यते राजदुर्गे[6]
मन्दाक्रान्ता भवतु न शुचा व्यक्तिरेकाऽपि तत्र ।
अस्मच्छ्रीमद्-गुरुपदयुगाब्जेष्वनन्तान् प्रणामान्
वावद्यास्ते[7] मम तु सुखतां प्राप्य चेष्यन्ति[8] तोषम् ।।४।।

किमन्यत्, ते मनोवार्त्तां पूर्णं जानाति मे मनः ।
मनोगतं ममाप्येवं वेत्त्यन्तःकरणं तव ।।५।।

(दोहा)

मोतीलालसुहृद्वरः, कुशलं सदा चिनुतात् ।
क्षेमदलं नैजं द्रुतं, सुसौख्यकरं लिखतात् ।।६।।

त्वदीयः सुहृत्
नवलकिशोरशर्मा गौड़ः

श्रीमोतीलाल शास्त्री
बालचन्द्रजी शास्त्री का मकान
मूराटीबा, किशनपोल बाजार, जयपुर

---

1. त्वा = त्वाम् । 2. अतिशयेन अन्तिकः, इष्ठन्प्रत्ययः । 3. त्यक्त्वा । 4. घण्टाद्वयम् । 5. चिन्तारहितेन । 6. राजगढे । 7. पौनः पुन्येन कथयेः । 8. चयनार्थकचिञ्धातोर्लृटि रूपम्, लप्स्यन्ते इत्यर्थः । 9. वेत्ति = जानाति ।

१३

संस्कृतपाठशाला, राजगढ़
ता० ३०–४–३५

श्रीमतां पूज्यतमानां गुरुवर्याणां चरणोत्पलेषु कोटिशो नमनं मम।
अपि च—

"ये मे वाचि विराजिता अविरतं तन्वन्ति वाग्वैभवं
वैदुष्यं वितरन्ति ये किमपि मे सारस्वतं शाश्वतम्।
ध्यानावस्थितिमेत्य ये च भविकं नित्यं दिशन्त्येव मे
झोपाह्वान् मधुसूदनार्यचरणांस्तान् दण्डवन्नौम्यहम्॥

श्रीमतामाशीर्वादेनामहमत्र कुशलं वर्त्ते। ह्य एव सायमलवरात् प्रत्यावर्त्तितोऽस्मि। तत्र अलवरराज्य–प्रधानामात्यानां श्रीमतां जावली-सरदार-महानुभावानां शोभनावासे तेषामेवाध्यक्ष्ये संस्कृत-शिक्षापाठ्यक्रम-निर्धारणाय समायोजितायाः समितेः द्वितीयमधिवेशनमासीत्। तत्राह-मपि प्रधानामात्यैराहूतः। इमे महानुभावाः श्रीमतां कृपया मयि भृशं स्निह्यन्ति। अस्यां समितौ श्रीमन्तो रामभद्रझा-महाभागा अपि ज्येष्ठपुत्रेण सह सम्मिलिता अभवन्। एषां तनयः साम्प्रतमिह शिक्षाध्यक्षः (एजूकेशन-डाइरेक्टर) वर्तते।

सायं श्रीरामभद्रझामहाभागानां गृहमुपेत्य भवतां सन्देशं तानवा-दिषम्। ते सपरिवाराः श्रीमद्भ्यः प्रणामान् निवेदयन्ति। ते अकथयन् यदेमे मे भगिनी-स्वामिनः पूज्यपादा मां सनामग्राहं सम्बोधयन्ति तदा मे प्रत्येकमङ्गं पुलकितं जायते। यतोऽत्र सर्वे "कश्चन मां सरदार, कश्चित् हाकिम साहब, पुनरन्यः जजसाहब, अपरः राजगुरुजी महाराज" इत्यादि सम्बोधनैरेव सङ्केतयन्ति। अतः एतेषाम् अर्चनीय-चरणानां दर्शनार्थमहं सदा समुत्सुकस्तिष्ठामि इति।

सायमेतेषां गृह एव मया भोजनं कृतम्। राजगढेऽत्र यद्यपि जयपुरापेक्षया अलवरापेक्षयाऽपि च सर्वविधा सुविधाऽस्ति, खाद्यवस्तून्यपि

स्वल्पमूल्यानि सन्ति तथापि पठनबाधा तु मां रात्रिन्दिवं तोतुदीत्येव। आगमनकाले जयपुरे श्रीमद्भिर्यैः कठोरैः शब्दैरहं न्यक्कृत आसम् यत्–"त्वं वेदाध्ययनं मध्य एव त्यक्त्वा अर्थोपार्जनार्थं सम्प्रति अलवर–राज्यसेवायां गच्छसि तदिदमनुचितम्।" तदस्य वाक्यस्य प्रत्येकशब्दो मम मानसे सदैव विपुलं तोदं तनुतेऽद्यापि। परं किं करोमि हतभाग्यः? जयपुरे तु भरण-पोषणार्थं किमपि न प्राप्यते स्म। विवशतावशादेव मयैवं विहितम्।

इदानीं ग्रीष्मावकाशा नातिदविष्ठाः[1]। अवकाश-दिनेषु सेवाया-मुपस्थाय यथा भवन्तः शुभादेशं दास्यन्ति तथैव करिष्यामि। जयपुरे स्वल्पे-ऽपि जीविकोपार्जन-सौविध्ये तत्क्षणमेव स्थानमिदं त्यक्ष्यामि। श्रीमतां कृपया इदमपि कार्यं तत्र न कठिनं भविष्यति इत्यपि विश्वसिमि।

शेषं कुशलम्। श्रीमोतीलाल–हेरम्बशास्त्रिप्रभृतयः सतीर्थ्या भ्रातरो नित्यं स्मृतिपथमायान्ति। अथान्ते पुनः प्रणमनं स्वीकुर्वन्तु भगवत्पादाः श्रीगुरवः—

यैः पूज्यैः श्रुतिततिभिः स्वधीबलेन
विज्ञानं विसकलितं सुवैदिकं हि।
ये मेऽलं जनिमथ हर्षिणीमकुर्वन्
वन्दे तान् गुरुमधुसूदनार्यपादान्॥१॥

इदमप्यस्तु—

(सोरठा)

वैदिक-गहनवनेषु, सञ्चरतां प्रणमनं मम।
भवतां चरणाब्जेषु, गुरूणां भक्तिपूर्वकम्॥२॥

चरणाम्बुजचञ्चरीकः
नवलकिशोरशर्मा गौडः

विद्यावाचस्पति, म०म०
श्री मधुसूदनजी ओझा
विद्याधर का रास्ता, जयपुर

१४

राजकीय-संस्कृत-विद्यालय
राजगढ (अलवर)
ता. २–७–३५

अलवर-राज्य प्रधाना ! मान्यामात्याः सतां शिरोमणयः !
चिकथयिषति[1] निजपीडां नवलोऽयं श्रीमतो नत्वा ॥१॥

निवेदनम्—

मुख्यामात्यवरा वृहस्पतिसमाः श्रीजावलीलाऽधिपाः[2]
लालज्ज्ये[3]गदितुं स्वमानसगतं भावं भवत्सम्मुखम् ।
मान्याः ! किं करवाण्यहं, गुरुवराः[4] जाता हि रुष्टा इव
त्यक्त्वाऽधीतिमिहार्थलोभवशगो राज्याश्रयं यद् गतः ॥२॥

भवन्तोऽतस्त्वाज्ञां प्रकृतिमधुरा दादतु[5] हि मे
यथाशीघ्रं येन त्वरितमथ गत्वा जयपुरम् ।
श्रुतीनां साङ्गानां पुनरपि समारभ्य पठनं
लभेयालं श्रीमद्-गुरुवरकृपांशं पुनरहम् ॥३॥

अलवर-राज्य-प्रधानामात्यान् श्रीजावलीकाश्यपीशान्[6] हि ।
आज्ञां याचति तेषां नवलकिशोरकाङ्कुरः प्रेष्ठः[7] ॥४॥

परम संमाननीय—
श्री जावलीसरदार महोदय
अलवरराज्य-प्रधानामात्य
जावली हाउस (कोठी)
स्टेशन रोड, अलवर

नवलकिशोरकाङ्करो गौडः

---

1. कथयितुमिच्छति । कथधातोः लटि सनि रूपम् ।
2. जावली+इला+अधिपाः । जावलीग्रामभूमीश्वराः ।
3. अत्यन्तं लज्जितो भवामि । यङि रूपम् ।
4. श्रीमधुसूदनझामैथिलाः जयपुरराजगुरवः
5. दाधातोर्यङ्लुकि लोटि रूपम् ।
6. काश्यपी=पृथ्वी, पृथ्वीपतीन्
7. अत्यन्तप्रियः ।

१५

जयपुरम्
ता. ५-३-३७

स्वस्ति श्रीधरशर्म-वैद्य-सुहृदे साहित्यतीर्थाय मे,
प्राप्तं त्वद्य भवद्दलं कुशलतोदन्तस्य संसूचकम् ।
वेदान्तं ननु दर्शनं हि भवता यत् पठ्यते वाल्लभं
स्थाने[1] तन्निरचीयताद्य पठनं वंशानुगं श्रीमता ।।१।।

तत्पूर्वं पठनीयमस्ति भवता भाष्येश्वरं शाङ्करं
वेदान्तोपनिषद्यतो बहुगुणा तस्मिन् वरीवर्त्यंहो ।
विद्वान् दार्शनिकोऽस्ति किं सुविदितस्तत्रापि कोटापुरे
शास्त्रं पाठयितुं त्विदं विरसकं शक्नोति यो वाल्लभम् ।।२।।

वेदान्तं समधीत्य मित्र ! भवताऽस्मिन् यौवने नूतने
वैराग्यं न हि धारणीयमहह ! त्यक्त्वा नवोढां स्त्रियम् ।
तच्चेन्नैव सखे ! भविष्यति तदाऽधीतिस्त्वियं निष्फला
तस्मात् सुस्थिरचेतसाऽत्र सरणौ[2] सञ्चिन्त्य पादं क्षिपेत् ।।३।।

दिव्यं भव्यमहो महोच्चमतुलं मध्येपुरं सुन्दरं
सर्वैश्वर्य-विलास-संविलसितं वस्तुं[3] गृहं विद्यते ।
मन्द्रध्वानवती वहत्यविरतं चर्मण्वतीयं नदी
वेदान्ताध्ययनस्य मित्र ! भवतः कोऽस्त्यत्र हेतुर्महान् ।।४।।

भार्याऽप्यार्यकुलोद्भवा शुभगुणा स्त्रीष्वग्रगण्या नवा,
द्रव्योपार्जन-सौख्यमप्यनुदिनं सञ्चीयते श्रीमता ।
संमानः स्वजनेषु दैहिकगदैरप्यस्ति शून्यो भवान्
नो पश्यामि विरक्तिकारणमहं मित्रे भवत्यण्वपि ।।५।।

त्वरितं किमपि न कार्यं कार्यं भवता तु काव्यतीर्थेन ।
स्मरसि न भारवि-वाक्यं न हि विदधीत क्रियां सहसा ।।६।।

सोऽयं शुभ उपदेशः सुहृत्संमितोऽधुना मया प्रहितः ।
पत्न्यादेशं लब्ध्वा यथारुचि सखे ! तथा कुरुतात् ।।७।।

इति स्वकीयं सुहृदं त्वनन्यं श्रीश्रीधरं पत्रमिदं विलिख्य ।
प्रतीक्षतेऽत्रानुदिनं समुत्कस्तदुत्तरं श्रीनवलः किशोरः ।।८।।

वैद्य श्रीधरशर्मा चतुर्वेदी काव्यतीर्थ
विट्ठलनाथसंस्कृतपाठशाला, कोटा

नवलकिशोरशर्मा गौडः

---

1. समुचितं हि । 2. मार्गे, वीथ्याम् 3. निवासं कर्तुम् ।

१६

जयपुरम्
ता. १९-११-४०

चतुर्वेदे सुहृद्वर्ये साहित्योपनिषज्जुषि ।
श्रीपुरुषोत्तमाचार्ये लसन्तु नतयो मम ॥१॥

विद्वत्पुङ्गवाः,

समायातो मम पार्श्वे भवत्पत्रं नीत्वा लवाणराजकुमारः । भवल्लेखानुसारं मया तदध्यापनं प्रारब्धम् । पाठ्यपुस्तकपठनेन सहासौ नित्यमनुवादमपि करोति । कादम्बरीतः सङ्गृहीतांशस्य हिन्दीं लेखयामि । नित्यं रात्रावष्टवादने सार्धैकहोरासमयं यावत् पाठयामि । प्रतिमासं त्रिंशद्रूप्यकाणि स दास्यति भवदादेशात् । अस्तु ।

अनन्यहृदयाः सुहृद्वर्याः,

व्यतीतेऽपि बहुतिथे काले साम्प्रतं तु स्वकीयानुजकृते धैर्यधनेन भवता नातिमात्रं सन्तप्यात्मा खेदनीयः । एवं भवन्तं रात्रिन्दिवं शोकमग्नमुदासीनञ्च लोकं लोकं गृहपरिजनस्य कीदृशी दशा भविष्यतीति धैर्यं धार्यम् । इदानीं भवान् परमलब्धप्रतिष्ठे मेयोकालेजे राजकुमारान् पाठयति, धर्मोपदेशञ्च कुरुते । स्वयमपि महान् शास्त्रवेत्ता दार्शनिकप्रवरोऽपि विद्यते । तत्कथं साधारणजनमार्गमनुसरति भवान् ? गीताचार्योपदेशानुसारं तद्विस्मरणमेव श्रेयः ।

सम्भवतोऽहमग्रिमे मासे दिनद्वयकृतेऽवकाशं लब्ध्वा गोपालबाड़ी नामकस्थाने भवतः पार्श्वे समागमिष्यामि । तत्र स्वलिखितकाव्यप्रकाशव्याख्यायाः कतिपयान् अंशानपि भवन्तं दर्शयिष्यामि । शेषं सर्वं कुशलम् । एधतामावयोः स्नेहः ।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीपुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी साहित्याचार्य
धर्मोपदेशक, मैयोकालेज, अजमेर ।

१७

सुमेरुकर्णमार्गः रामगञ्जः, जयपुरम्
ता० १०-६-४१

श्रीयुतपरमप्रिय-सुहृद्वर्य श्रीधरशर्मचतुर्वेदिन्, नमो नमः सपत्नीकाय भवते।

प्रियबन्धो,

अतीताः खलु द्विगुणिता आसन्नपञ्चपक्षार्धाः, नागतं भवतोऽनामयादिकुशलप्रवृत्ति[1]प्रवर्त्तकमेकमपि पत्रम्। अवश्यमत्र किमपि विशेषकारणेन भवितव्यम्। अथवा निमज्जित एव मम सखाऽपारे प्रमदा-प्रमदपारावारे। परं मद्विस्मरणन्तु भवत्कृते खपुष्पायितमेव[2] मन्येऽहम्।

मित्रवर,

दुर्दिष्टदुष्टेन[3] विहितानिष्टोऽहमिदानीं कष्टेन कालं गमयामि। परीक्षायामपि न साफल्यावाप्तिरभूत्। परम्परया श्रुतमिदमपि यत्काशीनिवासिभिः श्रीदामोदरलालगोस्वामिभिः सोऽयमनभ्रवज्रपातो विहितः। परीक्षाकृतेऽविगणय्य दैहिकं हितं रात्रिन्दिवं दृष्टिपथमानीतानि बहूनि पुस्तकानि टीकाग्रन्थाश्चाधीताः। आराधिताः प्रायः सर्वा देवता अपि, परं न लब्धं किमपि फलम्।

अनन्यहृदय वयस्य,

एवंविधानल्पव्यसनसमाकुलेनापि मया व्याख्यातः काव्यप्रकाशस्य कठिनांशभागः सम्यग्रूपेण। व्याचिख्यास्यते चाधुनाऽस्य दशमोल्लासः। एतदर्थञ्चापेक्ष्यते विशेषतः कोल्हापुरमहाविद्यालयस्य संस्कृतविभागाधिपतिना रचितया व्याख्यया सहितः काव्यप्रकाशः। श्रूयते, षड्विधव्याख्याविभूषितमस्तीदं प्रकाशनम्। यदि स्यात् स भवतो महाविद्यालयेऽन्यत्र वा तदा सम्यगनुसन्धाय प्रहीयतां सत्वरमेव यावच्छक्यम्, प्रतीक्षमाणोऽस्मि तत्पुस्तकम्।

सुहृद्वर,

निवेद्यतां प्रणिपातपरम्परां तस्मै विस्मृतनामधेयाय कोटानिवासिने मनस्विने भवत्सुहृदे। कश्चित् स्मरति मामसौ महाशयः?

एष सम्भावयामि मूर्ध्नि समुपाघ्राय समाश्लिष्य चाशीर्भिरायुष्मन्तं भवत्तनयम्। अन्यच्च प्रणिपातय सखे! मां श्रीमत्या युष्मत्सहधर्मिण्याश्चरणयोः। एधतामावयोरनुदिनं स्नेहश्चेति शिवम्। पत्रोत्तरं प्रतीक्षमाणो–

वैद्य श्रीधरचतुर्वेदी काव्यतीर्थ वेदान्तशास्त्री
विट्ठलनाथसंस्कृतपाठशाला, कोटा

नवलकिशोरकाङ्करः

1. कुशलवार्ता 2. गगनकुसुमवत् असम्भवमेव। 3. दौर्भाग्यवशात् दुष्टो जनस्तेन।

१८

रामगञ्जः, जयपुरम्
ता. १०–६–४६

अयि निरवद्य-विद्याभरणा वैयाकरणा अस्मत्प्रियसुहृदः श्रीपातीराम-शास्त्रिणो महाभागाः ! सस्नेहं नमस्कारा भवद्भ्यः ।

साम्प्रतं भवतां हरिद्वारावस्थितर्षिकुलब्रह्मचर्याश्रमस्य प्रधानाचार्य-पदे नियुक्तिरजायतेति भवत्पत्रेणाजानाम् । अनेनोदन्तेन नितान्त-ममोमुदम्[1] । स्थाने[2] हि पदप्राप्तिरियं सुहृदाम् ।

सम्प्रति व्याकरणाचार्याणां भवतां जयपुरीयसाहित्याचार्यपरीक्षायां तिष्ठासा[3] वर्वर्तीति शोभनो विचारः । अत्र कस्यचिदपि प्रान्तस्य परीक्षार्थी सम्मेलितुं शक्नोति, नात्र कार्या विचारणा । यथासमयमहमवश्यमेव एतत्सम्बन्धीनि पत्रादीनि प्रेषयिष्यामि । सर्वप्रथमं भवद्भिः काव्यप्रकाशः, रसगङ्गाधरः, ध्वन्यालोकश्चेति त्रयो ग्रन्थाः पठनीयाः । प्रश्नपत्राण्यपि प्राचीनान्यवश्यं भवतो निकषा प्रेषयिष्यन्ते ।

परश्वोऽग्रिमे वा सप्ताहे भवन्तो नरवरीये साङ्गवेदमहाविद्यालये स्वल्पसमयकृते यास्यन्ति । अस्य महाविद्यालयस्य पूर्णः सङ्केतः (पो. ग्रा. नरोरा, जि. बुलन्दशहर) मम पार्श्वे वर्त्तत एव । सत्यावश्यकत्वेऽहं तत्र पत्रं लेखिष्यामि, अन्यथा मासादस्मादूर्ध्वं हरिद्वारसङ्केतेनैव पत्रव्यवहारं करिष्यामि ।

शेषं कुशलम् । लाहोरनगरीयमावयोः शुभसम्मेलनं सदैव स्थायित्वं लभेत । वर्धतां च नौ स्नेहवल्ली ।

भवत्स्नेही—
नवलकिशोरकाङ्करः

श्री पातीराम शास्त्री व्याकरणाचार्य
प्रिंसीपल, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार

---

1. अत्यन्तं प्रसन्नोऽभवम् । मुद्धातोर्यङ्लुकि रूपम् । 2. समुचिता एव ।
3. स्थातुमिच्छा ।

१६

सुमेरुकर्णमार्गः
रामगञ्जः, जयपुरम्
ता० १५–४–५०

श्रीमत्सु विद्या-वयोवृद्धेषु शास्त्रैकचिन्तनपरेषु महर्षिकल्पेषु तत्रभवत्सु विद्यासागर-श्रीछज्जुरामशास्त्रिपादेषु प्रणतयः ।

पूज्यचरणाः,

श्रीमतां शुभाशीर्वादेन सकुशलोऽहं जयपुरमुपागतोऽस्मि, मार्गे न किमपि कष्टमनुभूतम् । दिल्ल्यां श्रीमतां सौजन्येनोपलब्धां, भवत्पार्श्वे 'माधोदास की बगीची' इति नामकस्थाने सुखावासव्यवस्थां सर्वविध-सुविधाञ्च स्मारं स्मारं ममान्तरात्मा महान्तं सन्तोषमनुभवति । सत्यं हि परोपकारव्रतिनो महान्तो भवन्तीति ।

भवतामादेशानुसारं मया तत्कार्यं सम्पादितमेव । श्रीमद्भ्‌च आराध्य-चरणेभ्यो म० म० श्रीगिरिधरशर्मचतुर्वेदेभ्योऽपि श्रीमतामविकलः सन्देशो निवेदितः । इमे कुशलिनः सन्ति भवताञ्च सर्वविधमनामयं पृच्छन्ति । समुचितमन्यदपि कार्यमुपदिश्य पुनरवश्यमनुग्राह्योऽयं स्वकीयो जनः—

नवलकिशोरकाङ्करः

विद्यासागर श्री छज्जुरामजी शास्त्री
माधवदास की बगीची
यमुनामार्ग, दिल्ली

२०

सुमेरुकर्णमार्गः, रामगञ्जः
जयपुरम् (राज०)
ता० २८-६-५४

सौ० श्री लीलादेवीदयाल-महोदये, विजयतां सुरभारती ।

रानीखेततः २३ । ६ । ५४ दिनाङ्के लिखितं भवत्याः पत्रं प्राप्तम् । हन्त, पूर्वन्तु कतिपयमासेभ्यः भवत्याः पितृपादाः स्वर्गं याताः साम्प्रतञ्च संस्कृतक्षेत्रे प्राप्तप्रतिष्ठा महती यशस्विनी भवन्माता सुगृहीतनामधेया श्रीमती क्षमादेवी रावमहाभागाऽपि पतिलोकं प्राप्तवती । तया मासत्रयं हृदयरोगाक्रान्तयाऽप्यभूयत । मयि तु तस्याः प्रभूतः स्नेहोऽवर्त्तिष्ट । भगवान् तस्यै स्वचरणेषु स्थानं प्रयच्छेत् ।

भवतीदानीं रानीखेततो मुम्बापुर्यां स्वनिवासस्थानं १. ७. ५४ तिथ्यङ्के यास्यतीति मुम्बयीसङ्केतत एव मया पत्रमिदं प्रेषितम् ।

जुलाई-मासस्य षष्ठदिवसे प्रातः सार्धाष्टवादने हस्तिनापुरात् प्रसारिते नभोवाणीकार्यक्रमेऽवश्यं भवत्या मात्रा लिखितां कथां श्रोष्यामि । यथासमयं पत्रप्रदानेनाऽनुग्राह्योऽयं भ्राता ।

भवदीयः
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीमती सौ. लीलादेवी दयाल
३७ न्यू मैरिन लाइन
फोर्ट बंबई

२१

सुमेरुकर्णमार्ग:, रामगञ्ज:
जयपुरम्
ता. १–७–५५

श्रीमन्त: पण्डितप्रवरा: सुहृद्वर्या: प्रथिताभिधेया: श्रीसारस्वत-महाभागा: ! सादरमसकृन्नमो नमो भवद्भ्य: ।

मम ज्येष्ठात्मजाया: सौभाग्यकाङ्क्षिण्या वत्साया रमाकुमार्या: शुभविवाहनिमन्त्रणं प्राप्य विवाहदिवसेऽत्रागमनमात्मन: कठिनं विभाव्य भवद्भि: पद्यचतुष्टयं विलिख्य यच्छुभाशंसनं प्रहितं तदर्थं सोऽयं स्वकीय एव सुहृज्जनो महान्तमाभारं प्रकटयति, हृदयतोऽनुरोरुधीति च भवतो लब्धे सौविध्ये मद्गृहानुपेतुम् ।

भवदीय: सुहृत्
काङ्करो नवलकिशोर:

श्रीयुत
दीनानाथशास्त्री सारस्वत
फर्स्ट बी. १६, लाजपतनगर,
नयी दिल्ली–१४



२२

जयपुरम्
ता. २६–११–५६

श्रीसंयोजकमहोदय,

श्रीमद्भगवदाचार्याभिनन्दनसमिति:, अहमदाबादनगरम् ।

अस्मदनन्यतमावलम्बन-सरणिङ्गतानां नानोपाधिसंश्लिष्ट-शुभाभिधेयानां भारतपारिजातमहाकाव्यादिलेखकानां श्रीभगवत्पादानां शोभनाभिनन्दनसूचनां तदर्थं शुभकामनानाथनाञ्च प्राप्य परमं मोमुदीति सम्प्रति मे मन: ।

इमे महाभागाः स्वकीयमविकलं जीवनपलं भगवदाराधनपूर्वकं भगवत्याः शारदाया उपासनायामेव समजीगमन् । संस्कृत-संस्कृत्योर्मूर्त्तरूपा विधृतविग्रहाश्च भक्तिदेव्या इमे आचार्यपादा अधिविद्वत्समाजं[1] किमप्यपरिमेयं स्वापतेयं[2] भजन्ति, विशिष्टां प्रतिष्ठां कलयन्ति, निगमागम-पीयूषरसाकू[3]पारमाचामन्ति, धर्मशास्त्रेऽनल्पिष्ठां निष्ठां प्रथयन्ति, दर्शनोपनिषदं सम्भरन्ति, शास्त्रान्तरेष्वपि शेमुषीसम्पदं व्यापारयन्ति, राजनीतावपि वाचोयुक्तिं प्रचारयन्ति, काव्यसाहितीसंविदं चुम्बन्ति, सौजन्यसंहतिं स्पृशन्ति, व्यवहारनैपुणीं निर्वहन्ति, शास्त्रार्थसारमनुसरन्ति, कामप्यलौकिकीं कृतिचातुरीञ्च धारयन्ति । किमन्यत्—

न सा विद्या, न तच्छास्त्रं, न चोपनिषदस्ति सा ।
यत्र भगवदाचार्या आचार्यत्वं न बिभ्रति ।।

एतेषां शिष्याः सेवकाः प्रशंसका भक्ताश्च कोणे कोणे सन्ति । मय्यप्येते निष्कारणं स्नेहसौजन्यामृतविप्रुषः[4] प्रवर्षन्ति, समये समये च समायोजितेषु विशेषायोजनेषु मामभ्यन्तरीकुर्वन्ति ।

ईदृग्विधानां सुप्रतीकानां[5] विद्वच्चरणानामभिनन्दनं कस्य मनस्तोषाय न भविष्यति ? एतदायोजनसमायोजका अवश्यं पूज्यपूजाव्यतिक्रमकिल्बिषादात्मानमरारक्षिषत इत्यम्यपि[6] धन्यवादार्हाः । हृदयेनाहमेतच्छुभकामनां कुर्वाणो भगवन्तं जानकीजानिं प्रार्थये यदसौ श्रीमदाचार्यचरणेभ्यो राका-शारद-शर्वरीश-विशदं यशो वितरेत् सनैरुज्यं पूर्णायुष्ट्वञ्च प्रयच्छेदिति मध्येराजस्थानं जयपुरमधिवसन् सूचयति—

नवलकिशोरकाङ्करः

अभिनन्दनसमितिसचिवः
श्री भगवदाचार्य महाराज
राजनगर सोसाइटी
अहमदाबाद

1. विद्वत्समाजमध्ये । 2. द्रव्यम् । 3. रससमुद्रम् ।
4. बिन्दून् । 5. सुप्रसिद्धानाम् । 6. इति + अमी + अपि—इति पदच्छेदः ।

२३

पारीककालेजः, जयपुरम्
ता. १०-१०-५७

श्रीमन्तः कविकर्म-कोविदचणाः साहित्यविन्मूर्धजाः !
नाना-काव्य-विधायिनो गिरिधरव्यासा धुरीणाः सताम् ।
श्रीमद्भिः सरलीकृतोऽभिनवश्लोकैश्च सङ्गुम्फितोऽ—
धीतश्चेतसि चिन्तितोऽपि समुदं काव्यप्रकाशो मया ।।१।।

मन्येऽहं समधीत्य मित्र ! भवतः काव्यप्रकाशन्त्विमं
स्वल्पेनैव परिश्रमेण सहसा सर्वे परीक्षार्थिनः ।
व्युत्पत्त्या सममद्भुतां सफलतामङ्कैरनल्पैरलं
लप्स्यन्ते, न हि संशयोऽस्ति सुदृढं संवावदीमि स्फुटम् ।।२।।

पूर्वं श्रीपुरुषोत्तमैरपि चतुर्वेदैः सुहृद्भिर्मम
ग्रन्थस्यास्य परिष्कृतस्य बहुशोऽकारि प्रशंसा शुभा ।
श्रीमन्तोऽपि यदाऽमिलंश्च पटनासम्मेलने सांस्कृते
तत्र ग्रन्थमिमं वितीर्य पठितुं मामन्वरुन्धंस्तदा ।।३।।

कालेजेऽत्र समेत्य किन्त्वतितरां कार्येषु लग्नोऽभवं—
स्तेनाऽऽलोचनमस्य हन्त ! सहसा व्यस्मार्षमेवाज्ञवत् ।
अद्य प्राप्य भवद्दलं सुविपुलोपालम्भवाक्यैश्चितं
निन्दन् स्वस्मृतिडाकिनीं स्वजठरं नापूर्य दृष्टोऽस्त्ययम् ।।४।।

अद्यान्यान्यपि पुस्तकानि भवतो दृष्ट्वैव स्वप्स्याम्यह-
मित्येतद् हृदि मम्मनीतु परमं श्रीमान् मदीयं वचः ।
अन्यत् किं विनिवेदयानि, नितरां लज्जे भवत्संमुखं
छन्दोबद्धदलं विलिख्य नवलस्त्वेवं क्षमां लिप्सते ।।५।।

श्रीयुत-गिरिधरलाल-व्यासं साहित्यशास्त्रिणं सुहृदम् ।
दलमिदमधुना लिखितं नवलकिशोरशर्म-गौडेन ।।६।।

पुनश्च, नीचमुद्दिश्य परभावापहारिणम् ।
प्रेषितं श्रावयेत् पद्यं तं भवान् मम नामतः ।।७।।

"ये सन्ति वञ्चनपरा नितरां कृतघ्ना जीवन्तु ते शुनइवान्यवमिं विलिह्य ।
उच्छिष्टमुत्सृजति यद् वनराजसिंहः पुष्णन्ति तेन मृग-शूकर-कुक्कुराद्याः ।।"

भवदीयो

श्रीगिरिधारीलालजी व्यास साहित्यशास्त्री
१२८ व्यासाश्रम, ब्रह्मपोल, उदयपुर

नवलकिशोरकाङ्करः

२४

रामगञ्जः, जयपुरम्
ता० १८-२-५८

श्रीमत्सु सम्मानास्पदेषु विद्वद्वर्येषु पं० श्रीकेदारनाथसारस्वतेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

इदानीं दीर्घदिनावकाशेषु दिवसैकक्कृते जयपुरमुपेतानपि विज्ञवर्यान् भवतो देहस्यात्मनोऽस्वास्थ्येन न द्रष्टुमपारयं न वा भवन्त एव कथमपि समयं निष्कास्य मत्प्राघुणिका[1] जाता इति शोचं शोचं[2] परमं चेखिद्यते चेतः। ग्रस्तु।

ग्रपि स्मरन्ति भवन्तो विविधकार्य-व्यापृतास्तद्दिनस्य मे वार्त्तां यदाऽहं श्रीमन्मन्दिरमुपेत्य रचनायाचनासम्बन्धे भवतोऽकथयम्। सम्प्रत्यद्य तद्दिन-निश्चयानुसारमयं लेखो भवत्समीपे प्रहीयते। लेखोऽयं भवन्नाम्ना प्रकाशमायास्यतीति सम्यगवलोक्य सत्यावश्यकत्वे च यत्र तत्र यथेच्छं परिवर्त्तनं परिवर्धनञ्चापि विधाय सुरक्षितदशायां प्रहिण्वन्त्विमं [3]मां समया समयानुसारम्।

भवज्जीवनपरिचयसम्बन्धे पूर्वं प्रकाशिता सामग्री तु मया गृहीताऽत्रैव, किन्तु ततोऽप्यधिका काचन समुल्लेखनीया वार्त्ता भवेत्तर्हि साऽपि प्रेषणीया। ग्रसौविध्याभावे छायाचित्रस्यापि प्रेषणं शोभनं बोभविष्यति[4]।

इत्यप्यवगमनीयं सूरिभिर्भवद्भिर्यदिदं सङ्ग्रह-पुस्तकं विद्यार्थिजनोपकारकन्तु भविष्यत्येव परं सहैव साम्प्रतिक-विपश्चितां परिचयकारितामप्युपयास्यतीति। शेषं कुशलम्।

स्नेही—
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीकेदारनाथसारस्वतः
ग्रात्मज्ञानभवनम्, रामनगर
पो. ग्रा. हृषीकेश

1. मम ग्रतिथयः। 2. णमुल् प्रत्ययरूपम्। 3. समयायोगे मामित्यत्र द्वितीया।
4. भूधातोर्यङ्लुकि लृटि रूपम्।

२५

सुमेरुकर्णमार्गः
रामगञ्जः, जयपुरम्
ता० १८-११-५८

श्रीमत्सु काव्य-साहित्यविद्याविनोदविलसद्भव्यभावेषु सुहृद्वर्येषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः ।

अयि स्वकीयासुभ्यो[1]ऽप्यधिकसुखदायिनः सहृदयाः सुहृद्वर्याः !

महतोऽनेहसो न मयाऽऽसादितं मानसोल्लासकरं भवतां दर्शनं कुशलावेदकं पत्रं वा । सत्यं हि मध्येरामनगरं[2] राजपण्डित-पदालङ्कृतं-परमोच्चदायित्वपदमधिरूढत्वेन कार्यव्यापृतिपरम्परासमाकुलिता निरन्तरं लेखन-पठनव्यापृताश्च सन्ति श्रीमन्तः । अपि नाम सम्भाव्यतेऽथवाऽयं जनो भवद्भिर्विस्मृत एव स्यात् । अहन्तु निशि शयानोऽपि सरीस्मरीमि भवतोऽन्वहम् ।

अनन्यहृदयाः सुहृद्वर्याः,

यत् किल प्रियबन्धुभ्यो मदीयं हृदयं किमु न तद् व्यक्तीभूतम् ? अपि स्मरन्ति भवन्तो यन्मया बहोः कालात् पूर्वं बी०ए० कक्षासु संस्कृत-मध्यापयितुमात्मनोऽयोग्यतोद्घोषणस्य वार्ता विश्वविद्यालयेन समुत्थापिता भवत्पुरो जयपुरे गदिताऽऽसीत् । सम्प्रति सा तु प्रतिपलं स्मृतिपटलमुपयान्ती मर्म भिनत्त्येव सहैवान्यान्यपि गार्हस्थ्यजीवनकष्टानि शत्रुभूतानीव संतुदन्ति[4] । कष्टकोटिकण्टकितः कथमपि तूष्णीभावमालम्ब्य जीवामि । सङ्कोचमञ्चन्नप्यद्य भवत्पुरत आत्मदुःखवृत्तं स्थापयामि, यतो हि स्वजन-निवेदितं कष्टं सह्यवेदनं भवतीति । किन्तु किं श्रावयामि स्वकीयकष्टोदन्ताननन्तान्, कथं वा ग्लपयामि दुर्भाग्योपहतः प्रत्यहमधिकाधिकमेव कष्ट-प्रायतामुपारूढामात्मनोऽवस्थितिं विलिख्य कमलकोमलानि वो हृदयानि? दूरं यातः किल मदीयस्तदानीन्तनोऽविकलोऽलौकिको मोदः। केवलमिदानीन्तु परिताप एव सुलभो मे कृते मनसः । यत एकतस्तावत्तनय-तनयोद्वाह-सम्पादनार्थं गरीयसी चिन्ताऽऽर्थिकी, अपरतो द्वितीयवारमपि बी. ए.

---

1. प्राणेभ्यः । 2. रामनगरस्य मध्ये 'पारेमध्ये षष्ठ्या वा' (२।१।१८) इति समासः।

3. स्मृधातोर्यङ्लुकि रूपम् । 4. पीडयन्ति ।

परीक्षाया आङ्ग्लसाहित्यपत्रेषु नैष्फल्यावाप्तिः, अन्यतश्चिरन्तन-चिन्तन-सुलभा चित्तचैतन्यापचितिः, अपरतः पत्न्या अपि बलच्छारीरमस्वास्थ्यम्, इतरतोऽस्मज्ज्येष्ठतनयेन विहित-प्रभूतपरिश्रमेणापि चिरायुषा नारायण-शास्त्रिकाङ्करेण न बी. ए. परीक्षोपाधिसमधिगतिः, सर्वतो ज्यायसी च क्षणे क्षणे सुरसास्यसमाना[1] परिवर्धमाना अयोग्यमुद्घोष्य कालेजतो निष्का-सनभीतिर्मां चिखादिषति[2]। सन्दर्भेऽस्मिन् साम्प्रतं भवतामिव ममापि स्थितिरधिगन्तव्या भवद्भिः। यथा पूर्वं मेयोकालेजे 'एम.ए.' परीक्षोत्तरणा-भावात् भवत्सम्मुखे कष्टमापतितमासीत्, तथैवेदानीमहम् 'एम. ए.' इत्युपाधिमलभमानो नित्यमनुतपामि। एवंविधैरहमहमिकयोपनिपातिभि-रुन्तुदैः[3] कष्टैरनारतमभिहन्यमानः क्षणमप्यनधिगतसुखो निःसारता-धिक्यस्यास्य जीवितस्य वियोगमेव कामये। इदानीं न सुहृदां विश्रम्भाला-पेषु मनोमोदमाप्नोमि, न पत्नीं निकषा विनोदमनुभवामि, न चान्यत्र सौख्यं कलयामि। एवंविधे व्यतिकरे पठन-पाठनादिकं लेखनादिकञ्च सर्वं पारे-समुद्रमेव गतं ज्ञातव्यं भवद्भिः। किमन्यद्विलिख्य दुःखैकसारेणात्मनो वृत्तेन कुसुमसुकुमाराणि सुहृदां हृदयानि तुदामि ?

सुहृद्वत्सलाः,

प्रहायि मया प्रिंसीपलमहोदयेनापि तत्सन्दर्भे पत्रमेकं रजिस्ट्रार-सविधे, किन्तु कुतो वा भागधेयं ममैतावद्यत्तेन समुचितं विचार्य तदुत्तरं प्रेषितं स्यात्। अथवा नैतदाश्चर्यं यन्न मे दिष्टोपहतचेतसो मनोरथः साफल्यमारूढः। अहो! गरीयसी समयगतिः। निश्चप्रचमहमिदानीं महति सन्ताप-सन्तति-महदुदन्वति[4] निमज्जितोऽस्मि। अपि नाम माम-विलम्बं मुञ्चेयुर्निष्करुणाः प्राणाः, येन प्रतिपलमेधमानयाऽनयाऽरुन्तुद-पीडया तु मे वियोगः स्यात्। अथवा दुःखोपभोगायैव मयि चैतन्यमर्पितं परमेश्वरेण। सर्वथा जगदीश्वर एव शरणम्।

सखिशिरोमणयः,

इत्थं व्यसनशतसमाकुलेन नवलेन मया सुखदुःखैकालम्बनभूतेभ्यो भवद्भ्यो निवेद्यात्मकष्टवृत्तं स्वल्पं लघुतां लम्भितं हृदयम्। किमधिकं प्राणाभ्यधिकेषु सुहृद्वर्येषु ? एधतां नौ प्रेमा चेति शम्।

भावत्को
नवलकिशोरः

श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य
राजपण्डित, रामनगर, काशी

---

1. आस्यम = मुखम्। 2. खादितुमिच्छति। खाद् धातोः सनि रूपम्।
3. मर्मभेदिभिः। 4. उदन्वति = समुद्रे।

२६

जयपुरम्
दि० १३.१०.६०

सुविदितवुद्धिविलास-द्राक्तरश्रीचन्द्रशेखरे विदुषि ।
विलसतु नमनं प्रेम्णा नवलकिशोरकाङ्करस्यास्य ॥१॥

विद्वन्मानस-राजहंस ! दिविषद्भाषा-विकासाश्रय !
व्यस्मार्षीत् पुनरप्यहो किमु भवान् स्वल्पीयसीं मेऽर्थनाम् ।
तद् भूयोऽप्यनुरोरुधीमि[1] समया मित्रं[2] विलिख्य त्विदं
यत् सम्प्रेष्य तदुत्तरं कृपयतात् मे मित्रवर्यो भवान् ॥२॥

कार्याधिक्यात् सुहृन्मे क्षणमपि[3] लभते लेखितुं कार्यलग्नो
जानाम्येवं तथापि त्रपिततरधिया साहसं संविचित्य[4] ।
साम्रेडं[5] प्रार्थयेऽहं निजविमतितते: शून्यतायां स्वकीयां
लघ्वीं भावार्थगुर्वीं वितरतु हृदभिव्यक्तिमाश्वत्र मित्र ॥३॥

इदमिह भूयो भूयो विलिखन् सखाऽयं काङ्करो भवत: ।
पत्रोत्तरमतिसरलं प्रतिपलं प्रतीक्षते सोत्क: ॥४॥

नवलकिशोरकाङ्कर:

डा० श्रीचन्द्रशेखरशर्मा
संस्कृतविभागाध्यक्ष, राजकीयमहाविद्यालय
रघुवरसदन, सिविललाइन्स
नयापुरा, कोटा

1. भृशमनुरोधं करोमि । 2. समयाशब्दयोगे मित्रमित्यत्र द्वितीया । 3. समयम् ।
4. संवि+चिञ्+ल्यप् । 5. वारं वारम् ।

२७

जयपुरम्
दि. २२-६-६१

अयि निरवद्य-विद्या-विद्योतितान्तःकरणाः श्रीमन्तः पट्टाभिराम-शास्त्रिचरणाः !

नमो नमो भवद्भ्यो विद्वद्वर्य्येभ्यः ।

कालिकातातो भवद्भिः प्रेषितां विवाहमहोत्सवाऽऽमन्त्रणपत्रिकां लब्ध्वाद्यामन्दया मुदाऽमोमुदम्[1] । दिष्टचा वत्साया इन्दिरायाः पाणिपीडन-परमोत्सवो मध्येमद्रासं सम्पद्यते—इति महतीयं खलु हर्षपरम्परा । अनल्पै-रिह गार्हस्थ्यकर्मभिरवरुद्धोत्कण्ठो न कथमपि पारयामि तत्रोपस्थातुम् । नाथेऽहं त्रैलोक्यनाथं जानकीजानिं यत् स वर-वधूभ्यां चिरायुष्ट्वं, मङ्गल-मयमनामयं, जीवने च सर्वविधं सौविध्यं प्रयच्छेत् । किमन्यत्—

इन्दिरेवेन्दिरा कन्या रामनाथश्च रामवत् ।
द्वयीयं लभतां सौख्यं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१॥

वरः श्रीरामनाथोऽयं वधूश्चेन्दुमुखीन्दिरा ।
उभौ चिराय सानन्दं जेजीव्यास्तां[2] ममाशिषा ॥२॥

अधिगतकुलदीक्षो लब्धसद्वृत्तशिक्षो
विधृतनयसमीक्षोऽवाप्तचिद्भूतिभिक्षः ।
कलितललितवेषो रामनाथः शुभंयुः[3]
कलयतु नववध्वा सार्धमायुःसहस्रम् ॥३॥

मिथः समञ्जार्थमुदीरिताया
वत्सेन्दिरायाः शुभलक्षणायाः ।
श्रीरामनाथस्य च तत्र मिश्रं
चक्षुश्चतुष्कं भविकाय भूयात् ॥४॥

भक्तिः प्रेयसि, संश्रितेषु करुणा, श्वश्रूषु नम्रं शिरः
प्रीतिर्यातृषु, गौरवं गुरुजने, क्षान्तिः कृतागस्स्वपि ।
मद्भर्त्तुः प्रियबान्धवा इति शुभा वृत्तिश्च सर्वेषु हि
भूयात्ते पितृवत्सले ! हृदयतस्त्वाशीरियं काङ्क्षरी ॥५॥

नवलकिशोरकाङ्करः

श्री पी. एन. पट्टाभिरामशास्त्री
धन्वन्तरि, वेलचेरी रोड
ताम्बरम् (पूर्व) मद्रास

---

1. अत्यन्त प्रसन्नोऽभवम् । 2. उभौ चिरं जीव्यास्ताम् । 3. शुभान्वितः ।

२८

संस्कृतविभागः
एस.एस.जी. पारीककालेजः
जयपुरम्
६-३-६२

अयि निरवद्य-विद्या-विद्योतितान्तःकरणाः श्रीमदुपाध्यायचरणाः ! सादरं प्रणतयः ।

अप्यनुपलं विपुलं कुशलं कलयन्ति श्रीमन्तः ! शिमलातः प्रकाशिते 'दिव्यज्योति' रित्यभिधां दधाने पत्रे गैर्वाणीं वाणीं समुद्दिश्य रसखन्या लेखन्या लिखितस्य तत्रभवतां भवतां लेखद्वितयस्य भव्यं भावं विभाव्य कोऽप्यपूर्वः समुल्लासः समुदभवन्मनसि मे । सहैवैका पिपृच्छाऽपि मामनुदत्तत्रभवतो भवतो जिज्ञासाः समाधानाय खेदयितुम्, यो हि खेदो निरन्तरं निरतिशयं शिरःशूलं नितान्तमरुन्तुदां रुजमिव जनयति मम विद्यार्थिनां च ।

मान्याः विद्वद्वरेण्याः,

अहमत्र राजस्थानविश्वविद्यालयतः प्राप्तप्रतिष्ठे पारीक-कालेजे संस्कृतप्राध्यापकपदमधितिष्ठामि । प्रतिवर्षमहमिह समनुभवामि विलोकयामि च यद् बी.ए. परीक्षायां एम.ए. परीक्षायां च ये परीक्षार्थिनः संस्कृतपत्राणामुत्तराणि संस्कृतभाषामाध्यमेन लिखन्ति ते स्वविषयं सम्यक् प्रतिपाद्यापि न पर्याप्तान् अङ्कानाप्नुवन्ति, किन्तु ये पुनश्छात्रा हिन्दीमाध्यमेन उत्तराणि वितन्वन्ति ते तदपेक्षया प्रभूतानङ्कान् लभन्ते । तदत्र केन कारणेन भवितव्यम् ? इति तु भवादृशा एव परममनुभविनोऽवगच्छन्ति । आसीत् पूर्वं मदीया धारणा यत् संस्कृतभाषाया अशुद्धलेखनेनैव नैते प्रकाममङ्कजातं लभन्ते, परं शुद्धलेखने पूर्णं परीक्षितेनाप्येकेन एम० ए० कक्षाया विद्यार्थिना तदपेक्षया नाधिका अङ्का लब्धाः । इदमहं मन्ये, बी. ए. परीक्षायाश्छात्रा अवश्यमशुद्धं लिखन्ति, परम् एम.ए. विद्यार्थिनस्तु शुद्धं लिखन्त्येव । कथं न ते पुनः समधिकान् अङ्कान् अधिगच्छन्ति ? अहन्तु परीक्षक-पदमधितिष्ठन् संस्कृतमाध्यममेवाभिनन्दामि । किं श्रीमन्तोऽपि स्वीकुर्वन्ति मदीयं विचारमुत हिन्दीमाध्यममेव परिपोषयन्ति भवन्तः ? स्वकीयान् हार्दिकविचारान् विलिख्य सन्देहमिममपनेतुं कृपयन्तु श्रीमन्तः ।

प्रोफे. श्रीरामजीउपाध्याय,
संस्कृतविभागाध्यक्ष,
सागरविश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः
(संस्कृतविभागाध्यक्षः)

२६

पारीककालेजः, जयपुरम्
ता. २६-३-६२

श्रीमत्सु भगवंती-सुरभारती-समाराधकेषु तत्रभवत्सु विद्वत्तल्लजेषु शतशः प्रणामपरम्पराः ।

यथासमयं समायातं भवदीयं कृपापत्रमवाप्य काामप्यमन्दां मुदमलभत मन्मनः। सत्यं हि गीर्वाणवाणी सम्प्रति पापप्रचारेऽप्यस्मिन् कलिकान्तारे श्रीमत्सदृक्षान् स्वपक्षपातिनोऽवलम्ब्य प्रसर्त्तुं शक्ष्यति । श्रीमद्भिः संस्कृतसाहित्येतिहासपुस्तक-प्रेषणाय लिखितमासीत्, परं न तत्कृते कृपा विहिता, अहन्त्वत्र प्रतिपलं प्रतीक्षे तत् पुस्तकम् ।

अहमिह भवतामन्येषाञ्च विपश्चितामनुमोदनमवलम्ब्य स्वकीयान् सर्वानपि बी. ए. कक्षायाः परीक्षार्थिनः संस्कृतभाषामाध्यमेन लेखितुं प्रेरितवानस्मि । मदीयो ज्येष्ठतनयोऽप्यस्मिन् वर्षेऽत्र राजस्थानविश्वविद्यालये संस्कृतविषये प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पत्रेषु एम.ए. परीक्षां दत्तवान् । अहन्त्वेनमपि अन्यानप्यस्य सहपाठिनः संस्कृतमाध्यममेवाश्रयितुं प्रेरितवानस्मि तथाकर्त्तुम् ।

वयमिह संस्कृतप्रचाराय संस्कृत-वाग्विवर्धिनीं परिषदं गतपञ्चदशवर्षेभ्यः सञ्चालयामः । अस्या अध्यक्षपदं म० म० गिरिधरशर्मचतुर्वेदिनः, साहित्याचार्य-राजगुरुगोपीनाथद्राविडा एम.ए. महाभागाः,राजस्थानसंस्कृतशिक्षानिदेशकाः के० एम० के० शर्माणो महाशया इत्याद्या अस्य आध्यक्षमकुर्वन् । सम्प्रति च राजस्थानविश्वविद्यालयस्य भू० पू० उपकुलपतयः डा० श्रीमथुरालालशर्माणो महाभागा अस्य अध्यक्षपदमलङ्कुर्वन्ति । परिषदियं संस्कृतभाषाप्रचारायैव संस्थापिता वर्तते ।

साम्प्रतं परिषत्परिवारः इदमनुभवति यत् एम. ए. कक्षायां सर्वप्राथम्यमुपलभ्यापि प्रायो जना न संस्कृते लेखने भाषणे वा कुशला भवन्ति । अतः कलङ्कममुं नाशयितुं परिषदियं विश्वविद्यालयाधिकारिणः प्रार्थयितुमिच्छति यत् ते बी. ए. कक्षायाम् एम. ए. कक्षायां च संस्कृतपत्राणि आंग्लभाषामाध्यमस्थाने संस्कृतभाषामाध्यमेन निर्मापयेयुः, तेषामुत्तरलेखनमाध्यममपि संस्कृतं भवेदिति । यद्यपि प्रारम्भे बहवोऽस्य प्रस्तावस्य विरोधमाचरिष्यन्ति, परं यथाशक्यं वयन्तु यतिष्यामहे एव। शेषं कुशलम् ।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीरामजी उपाध्याय, संस्कृतविभागाध्यक्ष
सागरविश्वविद्यालय, सागर

३०

पारीककालेजः, जयपुरम्
ता० १०-३-६५

विद्या-वयो-यशो-मेधा-वृद्धान् पूज्य-पदाब्जकान् ।
"जोशीजी"ति पदाख्यातान् विबुधान् नन्नमीम्य[1]हम् ।।१।।

प्राच्यार्वाच्य-समस्तशास्त्र-कुशला विद्यावतामाश्रयाः
शान्ताः सत्यसमेघमानमनसो गीर्वाणवाणी-प्रियाः ।
"जोशी"ति प्रथिताभिधेय-विदिताः श्रीमण्डिताः पण्डिता
लक्ष्मीलालबुधा जयन्ति कृतिनामुद्धारधूर्धारकाः ।।२।।

विद्वज्जनोद्धारघृतव्रतानां
गुणज्ञता-धर्म-रतान्तराणाम् ।
जोशीत्युपाह्वेन समादृतानां
शुभाय भूयान्नव-वत्सरोऽयम् ।।३।।

हा हन्त कालो गत एव भूयान्
परं न पत्रं भवतां मयाऽऽप्तम् ।
प्रतिक्षणं तत् प्रसमीक्षमाणः
कष्टेन घस्रान्[2] गमयामि नित्यम् ।।४।।

मदीयं प्रार्थनापत्रं यदर्थं श्रीमतेऽर्पितम् ।
तत्कृते धाष्टर्चमाधाय भवतः स्मारयाम्यहम् ।।५।।
श्रीमतां हि शरण्यानां प्राप्याप्यालम्बनं परम् ।
निःशरण्य इवात्मानं मन्वानस्तोतुदीम्य[3]हम् ।।६।।
विश्वविद्यालयो मे तु प्राणानेव जिहीर्षति[4] ।
तद्रक्षणं भवद्धस्ते विद्यते, तद् विधीयताम् ।।७।।

वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्करः

परम संमाननीय–
श्री लक्ष्मीलालजी जोशी
चेयरमैन, माध्यमिकशिक्षाबोर्ड, अजमेर

....

1. नम धातोर्यङ्लुकि रूपम् 2. दिवसान् 3. व्यथनार्थक तुद धातोर्यङ्लुकि रूपम् ।
4. हर्तुमिच्छति, सनि रूपम् ।

३१

पारीककालेजः, जयपुरम्
ता० ८–६–६५

सुहृद्वर्येषु श्रीयुतमूलचन्द्रशर्म-महाभागेषु सस्नेहं नमस्काराः ।

बन्धुवर्याः,

पत्रं प्राप्तम् । भवन्तो राजकीय-शिक्षक-प्रशिक्षण-महाविद्यालयतो विश्रामं गृहीतवन्तः सन्तीत्यत्र कास्ति विचारणा ? इदानीं भवन्तोऽत्र पारीककालेजस्य शिक्षक-प्रशिक्षण-विभागे संस्कृतप्राध्यापकपदे समाजिगमिष[1]न्तीऽत्यपि ससुचितो विचारः ।

स्निग्धहृदया महोदयाः,

अत्र वेतनं प्रतिमासं पूर्णमेव सर्वेभ्यो दीयते । नास्मिन् विषये भवद्भिरणोरणीयानपि सन्देहो मनसि करणीयः ।

श्रीगोपाललालपुरोहितमहाभागमहं त्वद्यैव सानुरोधं भवत्कृते वावदिष्ये[2] । अयमिह प्राचार्यस्त्वस्त्येव, किन्तु सहैव मे प्रगाढसहृदय-सहाध्यायी चाप्यस्तीत्यत्र नास्ति संशयः । पूर्वमावामिह जयपुरेऽग्रवाल-पाठशालायां सहपाठिनावास्व । सुहृन्निर्विशेषं विद्वत्प्रियं श्रीमन्तं कन्हैया-लाल "तिवाड़ी" महाभागमपि भवदर्थं निश्चितमनुरोरुधिष्ये[3] । नात्र भवद्भिरधिकं वाच्यम् । भवद्भिः प्रार्थनापत्रन्तु प्रेषितमेव । साम्प्रतं वीतचिन्तैर्भवद्भिर्भाव्यम् । श्रीमत्सदृक्षाः पूर्णानुभविनः शिक्षकप्रशिक्षणकार्य-विचक्षणाः कुतोऽत्र लप्स्यन्ते ? । इत्यपि भवन्तो जानन्ति– यत् "भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः" इति । साक्षात्कारदिवसाद्दिनद्वयपूर्वमेवात्र भवदागमनं श्रेयस्करं भविष्यतीति सूचयति—

नवलकिशोरकाङ्करः

श्री मूलचन्द्र शर्मा एम. ए.
लाल दरवाजा, अलवर

---

1. आङ्पूर्वकगम् धातोः सनि रूपम् । 2. अनु + रुधधातोर्यङि रूपम् ।
3. वद् धातोर्यङि रूपम् ।

३२

जयपुरम्
४–१०–६५

मान्या म० म० स्वभावसुकुमाराः श्रीश्यामकुमाराचार्याः,

नमस्काराः समर्प्यन्ते श्रीमद्भ्यः ।

ह्यः श्रीमतां पत्रं प्राप्तम् । महीयसे श्रेयसे स्यादयं दीपमालिकामहः सपरिवाराणां पण्डितपुरन्दराणां भवताम् । साम्प्रतं तु पापस्थानीयानां कौणपकल्पानां[1] लोकानां कुकृत्यैरनुपलं पीडितहृदयैरस्माभिर्न ससुखं भुज्यते, न पीयते, न स्थीयते, न सुप्यते, न कस्यचिदपि सुहृदो यथासमयं कुशलं पृच्छ्यते, न वा प्रतीक्ष्याः प्रणम्यन्ते, नापि सत्यवसरे चाभिनन्द्यन्ते । किमन्यत्, न स्वस्थचित्तैर्निश्चिन्तैः शास्त्राणि परिशील्यन्ते । सत्यमेव शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्त्तते । एतदतिरिक्तमस्मदुपरि तु परमेश्वरोऽपि रुष्ट इव प्रतीयते । यतो रोगशय्या[3]मधिशयानाया मम जायाया एकमासादप्यधिकः समयो व्यतीतः परं सम्प्रत्यपि स्वस्था न जाता सा । अन्येऽपि गृहप्राणिनः प्रायोऽस्वस्थाः सन्ति । इत्यादिभिरेव कारणैश्चिन्ताग्रस्तस्य मम पत्रोत्तरलेखने विलम्बः समभवत्, नान्यत् कारणम् । न किमपि भवद्भिरन्यथा चिन्तनीयम् ।

व्याकरणसाहित्यप्रकाशपुस्तकं भवन्तोऽवश्यं लप्स्यन्ते । नात्र सुधीरैर्भवद्भिरधीरैर्भाव्यम् दीर्घदिनावकाशेषु स्वयं तत्रोपेत्य सुहृद्भ्यो भवद्भ्योऽर्पयितुं यतिष्ये ।

समितेः शाखास्थापनयत्नः प्रारब्धः । सति सौविध्येऽत्र शाखा स्थापयिष्यते ।

आयुष्मान् नारायणः सम्प्रत्यनुसन्धानकार्ये व्यापृतोऽस्त्येव । किन्तु सहैव स्वस्थानान्तरणप्रयत्नेऽपि दत्तदिष्टोऽपि[4] वर्तते । तत्कृत एव स साम्प्रतमजयमेरुं गतो विद्यते । शेषं कुशलम् ।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्यं
आचार्यभवन, मुजफ्फरनगर

---

1. राक्षससदृशानां 2. पूजनीयाः 3. 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति सूत्रेण शय्यामित्यत्र द्वितीया । 4. दत्तसमयः । 'कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयोऽप्यथ पक्षतिः' इत्यमरः ।

३३

पारीकमहाविद्यालयः
जयपुरम्
ता० १६-२-६६

श्रीमन्तो जयन्तकृष्ण ह० दवेमहाभागाः ! नमो नमः श्रीमद्भ्यः प्राच्यार्वाच्योभयविद्यापारदृश्वभ्यः ।

बहोः कालात् स्मृतिपथमानीतोऽयं जनः । सम्प्रति तु स्वविचारान् प्रकटयितुं भारतीयविद्याभवनीयां संवित्-पत्रिकां मां[1] समया सम्प्रेष्य सत्यं हि मामुपकृतवन्तः श्रीमन्तः ।

मान्याः,

विदितवैदुष्यैर्भवद्भिः परमप्रतीक्ष्यैः श्रीदीक्षितैश्च सम्पादिता, विपश्चित्परम्परा-पुरो-हितैः श्रीभाईशङ्करपुरोहितैस्तथा समधिगतशास्त्र-स्वाध्यायैः श्रीमदुपाध्यायैश्च सुश्रीकतामापादिता सचित्राऽपि विचित्रा त्रैमासिकीयं पत्रिका प्रथमवारमेव लोचनगोचरताङ्गता तथातिशयानन्द-सन्दोहदायितामुपयाता यथाऽत्र कालेजेऽध्ययनाध्यापन-परवशेनाऽपि मया नैतत्पठनादुन्मोक्तुमपार्यतेत्यहो पत्रिकाया अस्या लेखानां सरसता, सरलता, चेतोग्राहिता, विषयवर्णनस्य विगलितवेद्यान्तरता शोभनसम्पादयितृता च । निश्चप्रचं वावदीमि[3] यदस्याः सर्वाऽपि लेखसामग्री हृदयहारिणी, बहुविज्ञ-विज्ञेय-विषय-विभूषिता च । वैशिष्टचन्त्वेतद्यदत्र न केवलं विदुषामेव लेखा अपि तु विश्रुतवैदुष्य-विदुष्योरपि लेखद्वयी तानयति[4] सुख-सन्तान-वितानं पाठकानां मनःसु ।

अत्र हि भारत-भारती-समुद्धरणदृढव्रतश्रीराजगोपालाचार्य-प्रतिवादि-भयङ्कर-श्रीमदण्णङ्गराजाचार्य-विद्वत्कुलशेखरश्रीभाईशङ्करप्रभृतीनां लेखाः पत्रिकाया गम्भीर-ज्ञान-भरितां प्रमाणयन्ति । गवेषणापूर्णलिखितानां

---

1. समयाशब्दयोगे द्वितीया, मम समीपे इत्यर्थः । 2. पूज्यैः । 3. भूयो भूयो वदामि । वदधातोर्यङ्लुकि रूपम् । 4. विस्तारयति ।

शोधलेखानामैतिहासिकलेखानामपि नात्राभावः । वनिता इव नवीनता-भरिताः कविता अपि दर्शं दर्शं केषां न हृदयेन मोमुह्यते ।

यथाऽन्यपत्र-पत्रिकादिषु प्रतिपदं प्रभूतरूपेण नयनातिथितां याता व्याकरणाद्यशुद्धयः पाठकानां चेतांसि तोतुद्यन्ते[1] न तथाऽत्र स्वल्पोऽप्यवसरस्ताभिर्लभ्यते । यद्यत्र किञ्चिद्भाषासारल्यं भवेत्तर्हि आङ्ग्लविद्यालय-महाविद्यालयादिष्वप्यध्येतारो विद्यार्थिनो लाभं लालभ्येरन्[2]निति स्व-विचारं प्रस्तौति—

नवलकिशोरकाङ्करः
(संस्कृतविभागाध्यक्षः)

श्रीजयन्तकृष्ण ह० दवे
भारतीयविद्याभवन, चोपाटी रोड, बम्बई-२०

1. तुद् धातोर्यङि । 2. लभ् धातोर्यङि ।

३४

विद्यावैभव-भवनम्
रामगञ्जः, जयपुरम्-३
ता. १०–१–६७

अयि प्राच्यार्वाच्योभयविध-विद्यासङ्गम-महातीर्थाभिषेक-पावनीकृत-वाङ्मनःशरीराः, नैकविध - पद्यप्रबन्ध-निर्माणसमुच्छलदच्छ-सुयशः-स्तोम-सोम-धवलित-दिग्-दिगन्तरालाः, साम्प्रतिक-नृपनीति-निपुणाः, भूतपूर्व - विहारराज्यपाला विश्वविश्रुतनामवैभवाः श्रीमन्तो डाक्टर 'अणे' महाभागाः !! विलसन्तुतरां श्रीमद्भूचो मदीयाः कोटिशो नतयः ।

दलं[1] लब्धम् । अप्यनाकुलमविकलं कुशलं कलयन्ति सपरिवाराः श्रीमन्तः ? भवतु भवतामपि प्रभूताय भविकाय नूतनोऽयमाङ्ग्लानां हायनः ।

मान्याः,

कथं भवन्तो मन्यन्ते यदहं जयपुरमुपेत्य कार्यान्तराश्लिष्टः श्रीमतो व्यस्मार्षम्, तत्कर्म च नाकार्षम् । अहन्तु यदा हि संस्कृतमहासम्मेलनावसरे मुजफ्फरनगरे गृहीतावतारमिव सर्वश्रेयस्करं शङ्करं भवन्तमद्राक्षं तदाप्रभृत्येव श्रीमत्सौहार्देन वशीकृत इव, वशंवद इव तनयीकृत इव चात्मानं सम्भावयामि । श्रीमतां सहजं सौजन्यं, अनुपममौदार्यं, विलक्षणं वैचक्षण्यं, विदितं वैदुष्यञ्च स्मारं स्मारं[2] साम्प्रतमपि किमप्यमन्दमानन्दसन्दोहमनुभवामि, अविलम्बमेवाभिनवां दिल्लीमुपेत्य च परमावश्यकमेकं कार्यं सम्पादयितुं भवतस्तुतुत्सामि[3] । श्रीमत्स्वात्मीयतोदयेऽवश्यं कश्चन हेतुरचिन्त्यः प्रतिभाति । यतो हि—

---

1. पत्रम् । 2. स्मृत्वा । स्मृ धातोः णमुल् प्रत्ययः । 3. तुद्धातोः सनि लट् ।

"व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते"[1] इति ।

पत्रोत्तरदानविलम्बतो विहितापराधोऽहं भूयो भूयो श्रीमतस्तदर्थं क्षमां याचे ।

अथ श्रीमतामपि सुतनिर्विशेषो मदीयो ज्येष्ठतनय आयुष्मान् नारायणकाङ्करः पातयत्यात्मनो मस्तकं श्रीमतां चरणसरोरुहेषु श्रेयोऽधिगत्यै ।

शेषं कुशलम् । सम्भवतोऽयं स्वकीयो जनोऽग्रिमे पक्षे श्रीमतः[2] समया समुपस्थास्यतीति विनिवेद्य विरमति—

नवलकिशोरकाङ्करः
(संस्कृतप्राध्यापकः)

विद्यावयोवृद्ध
श्रीमान् डा. माधव श्रीहरि अणे
एम०पी०
(भू० पू० विहारराज्यपाल)
5 मीनाबाग, न्यू दिल्ली

1. भवभूतेः उत्तररामचरित-पद्यम् । 2. भवतां समीपे । समया शब्दयोगे द्वितीया ।

३५

पारीककालेजः,
जयपुरम्
ता० ३–७–६७

अयि संमाननीयाः सुधीवराः श्रीसुधीरकुमारगुप्तमहोदयाः,

नमो नमः श्रीमद्भ्यः संस्कृतजीवनेभ्यः ।

श्रीमद्भिः प्रहितं पत्रं प्राप्तम् । संस्कृतविद्यार्थिनां साम्प्रतिकीं शोचनीयां दशां दर्शं दर्शं श्रीमन्त इवाहमपि प्रतिपलं परितपामि, समनुभवामि चान्येऽपि संस्कृतानुजीविनो मनस्विनो नूनमेवमेव परमां वेदनामनुबोभुवत्येव[1], यतो निश्चयेन सर्वत्र स्कूलकालेजेष्वियं देववाणी विश्वभाषाऽम्बाऽपि भवन्ती निरवलम्बा इव कण्ठागतप्राणा कृच्छ्रादूर्ध्वं श्वसन्तीवान्तिमान् श्वासान् गणयति । किन्तु विद्यालय-महाविद्यालयादिषु संस्कृतविद्यार्थिनां सङ्ख्या-परिवर्धनाय भवद्भिर्योऽयमुपायोऽवलम्बितो नाहं तमंशतोऽप्यभिनन्दामि । क्षन्तव्यं मे धाष्टर्यम्, नात्र विज्ञबन्धुभिर्भवद्भिः किमप्यन्यथा चिन्तनीयम् । दीर्घकालिकेन स्वकीयेनानुभवेनाहमेवं वक्तुं प्रभवामि ।

प्रभूतप्रभावा महानुभावाः,

संस्कृतच्छात्राणां ह्रासस्य प्रधानं कारणन्त्वहं संस्कृतज्ञानां विज्ञानां कार्यक्षेत्रस्य शून्यत्वं लघुत्वमेव च केवलं कलयामि । एतद्दिशायां जीवननिर्वाहसाधनोपयोगिविस्तृतं कार्यक्षेत्रं लोकं लोकं लोकाः स्वयमेव संस्कृताध्ययनायाहमहमिकया प्रवर्त्स्यन्ति यथान्याधुनिकविषयानध्येतुं ते कृतोत्साहा दरीदृश्यन्ते ।

साम्प्रतमस्माकं प्रमुखाः शासकाः सभा-सम्मेलनादिषु सम्मिल्य समुच्चान् मञ्चानधिरुह्य च मुक्तकण्ठं संस्कृतगुणान् गायन्ति, सर्वत्र शिक्षाक्षेत्रे संस्कृतस्यावश्यकतां महत्ताञ्च प्रदर्श्य विनाऽऽयासं प्रयासं हि साधुवादान् समर्जयन्ति । एवमेव न जाने संस्कृतप्रचाराय किं किं प्रतिज्ञाय ते जनताया

1. दृष्ट्वा दृष्ट्वा, लोकघातोणमुल् ।

धन्यवादानाप्नुवन्ति । परन्तु सत्यं वच्मि, ईदृग्विधैः प्रदर्शनमात्रैकफलै-र्भाषणादिभिः संस्कृतभाषाया न स्वल्पतमोऽपि प्रसारः सुकरः । प्रसारस्तु तदैव भविष्यति यदा विषयान्तरविदां लोकानामिव संस्कृताध्येतॄणामपि सर्वतः कार्यक्षेत्रं प्रसरीसरिष्यति । ....
....।

विद्वद्वर्याः,

एवंविधे व्यतिकरे सर्वंविधानुभववन्तोऽपि भवन्तो बालान् प्रारम्भतः केवलं व्याकरणमेव पाठयितुं कृतसाहसाः सन्तीति किमाश्चर्यमतः परम् ? अहमवगच्छामि, भवन्तः सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः सन्ति, स्थानप्रभावात् कर्त्तुम-कर्त्तुमन्यथापि कर्त्तुं प्रभवन्ति, करिष्यन्त्यपि सहजमेव स्वविचारानुसारम् । परन्तु सत्यानुस्यूतेयं मे कथितिर्यदेवंविधे व्याकरणप्रधाने पाठ्यक्रमे प्रारब्धे तु यः कश्चनैकोऽर्द्धो वा बालकः पी. यू. कक्षायां प्रथमवर्षे वा संस्कृतपठनाय समायाति सोऽपि व्याकरण-व्याघ्र-मुख-प्रसारमालोक्य भीतातिभीतो दूरत एव पलायिष्यते ।

भवतां पाठ्यक्रमोऽयं भवत्कृते त्ववश्यं लाभकारी परिश्रमापहारी च बोभविष्यति, यतो यो वै कश्चन कृतसाहसो विद्यार्थिजनो बी. ए. परीक्षा-मुत्तीर्य एम. ए. कक्षायां पठितुं श्रीमतां सविधे समायास्यति, अवश्यं स व्युत्पन्नतोपेतो भविष्यति । न भवद्भिस्तत्कृते श्रमः समाचरिष्यते । किन्त्वात्मनः स्वल्पश्रमापनयनाय नेयं नूतनानर्थपरम्पराऽऽरम्भणीया दया-सिन्धुभिर्बन्धुभिर्भवद्भिः । अथवा, न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः । कोऽहं वराको भवद्भिरुद्धं वक्तुम् ? परन्तु धाष्टर्येनाहं तु भूयो भूयो नामं नामं सानुरोधमिदमिवावेदये यच्छ्रीमन्त एतादृशं व्याकरणाग्रहं तृणत्याज्यं परि-त्यज्य हृदयावर्जकं कमपीदृशं पाठ्यक्रमं निर्धारयन्तु येन संस्कृताध्ययने छात्राणां रुचिरुद्भवेत् । छात्राणां सङ्ख्यावृद्धिस्तु संस्कृतज्ञानां जीवनोप-योगिकार्यक्षेत्रस्य विस्तारत एव भविष्यति, न पुनर्व्याकरणप्रधानपाठ्यक्रमेण । कस्यचिदपि कार्यस्यारम्भात् पूर्वमस्माभिस्तस्य श्रेयःपक्षं हेयपक्षञ्चोभयमपि विमृश्याग्रे चरण-निक्षेपः करणीयः । उक्तमपि नीतिविद्भिः—"उपायं चिन्तयन् प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत्" इति ।

यदि समयसौविध्यं भवेत्तर्हि यत्र कुत्रापि स्थलेऽत्रत्या वयं सर्वं एव संस्कृतजीविनः सम्मिल्य विषयेऽस्मिन् विचारविनिमयं कुर्याम ।

प्रासङ्गिकमिदमपि करबद्धं प्रार्थये, यद्भवन्तः स्वयं संस्कृतज्ञाः, संस्कृतज्ञानां सविध एव च स्वविचारपत्रं प्रेषितवन्तस्तदा काऽत्र विषमा समस्या समुपस्थिता यद्विवशतां गता भवन्त आङ्ग्लभाषायां पत्रमिदं लिखितवन्तः ? किं संस्कृते न वर्त्तन्ते तादृशाः शब्दा ये श्रीमतां भावान् प्रकटयितुं नालम् ? यद्येवमनुभवन्ति भवन्तस्तर्हि साऽपि संस्कृतभाषाया-स्त्रुटिरस्माभिरेव दूरीकरणीया । नैतत्कृते स्वर्गात् कश्चन समायास्यति ।

किमधिकम्, यदि मदीयेनानेन रूक्षलेखनेन कुसुमसुकुमाराणां सुधीर-कुमाराणां तत्रभवतां कमलकोमले हृदये स्वल्पाऽपि वेदना सञ्जाता तर्हि क्षन्तव्यो मेऽपराधः परमबन्धुभिः श्रीमद्भिः । यतः कालिदासेनाप्युक्तमिदम्-"प्रह्वेषु निर्बन्धरुषो हि सन्तः" इति । किं करोमि, विकलितेन हृदयेनैत-त्सर्वं मया लिखितमिति पुनः क्षमां याचमानः —

नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त
संस्कृतविभागाध्यक्ष,
राजस्थानविश्वविद्यालय,
जयपुर

३६

पारीककालेजः
जयपुरम्
ता० १४-७-६७

विद्वद्वर्याः श्रीमन्तो गुप्तमहोदयाः,

नमो नमो भवद्भ्यो दयासिन्धुभ्यो बन्धुभ्यः।

श्रीमतां १०-७-६७ दिनाङ्काङ्कितं पत्रं प्राप्तम्। अनधिगताङ्ग्ल-भाषाधिकारस्त्वहं श्रीमतां पूर्वपत्रस्येममेव सारांशमध्यगच्छं यदनुदिनं वर्धमानस्य संस्कृतच्छात्रसंख्याह्रासस्य दूरीकरणाय पी० यू० कक्षायां प्र० व० कक्षायां च व्याकरणप्रधान एव पाठ्यक्रमो भवेत्, तत्पाठनप्रणाली च श्रीमत्प्रदिष्टा स्यादिति। एतदेवोद्दिश्य मयाऽप्यमी विचारा व्यक्तिगतरूपेण प्रकटीकृता आसन्। न तत्राक्षेपसरण्या अणोरणीयान् लेशोऽपि। यदि श्रीमद्भिराक्षेपकोटौ प्रकारोऽयं गणितस्तर्हि तदर्थं पुनरपि क्षमां याचतेऽयं जनो भवतः। पूर्णोऽस्त्यमपि मे विश्वासो यच्छ्रीमद्भिर्येषां येषां सविधे प्रहितानि पत्राणि, न तेषामेकेनापि प्राध्यापकेन श्रीमत्सदृक्षाणां महापुरुषाणामध्यक्षमीदृग्विधं रूक्षतोत्तरमुत्तरं संप्रेष्य महानपराधः कृतः स्यात्। अस्तु।

मान्याः,

वैदेशिकभाषाशिक्षणप्रणालीमनुसृत्य संस्कृतवाचो नवीनां व्याकरण-पाठनप्रणालीं तत्रभवन्तो भवन्तोऽप्यवश्यं काममाविष्कुर्वन्तु, नात्र मे स्वल्पतमोऽपि विरोधः। अनेन त्वहममन्दां मुदमनुभवामि। निश्चप्रचमनया प्रणाल्य व्याकरणाध्ययनाध्यापनकृतौ सारल्यं सौविध्यञ्च बोभविष्यति, यतः समयानुकूला समीचीना च सा प्रणाली। किन्तु मन्निवेदनन्तु एतावदेव, यत् प्रथमं तु संस्कृतमध्येतुमेव विद्यार्थिनो नायान्ति, तत्रापि यदि व्याकरणप्रधान एव पाठ्यक्रमः स्थास्यति तर्हि तु सर्वथैव छात्राः संस्कृतकक्षाया मुखमपि न दिदृक्षिष्यन्ते[1], कीदृशोऽपि वा किं न भवेत् स संस्कृतस्य पाठनप्रकारः।

अतः संस्कृतविद्यार्थिसंख्यावृद्धिमिच्छद्भिः श्रीमद्भिः सर्वप्रथमं संस्कृत-ज्ञानां कार्यक्षेत्रस्य संवर्धनोपायः सम्पादनीयः। भवदीया संस्कृत-विद्यासमितिः सम्मिल्य अस्मत्प्रस्तुतानामुपायानां विश्वविद्यालयसाध्यानपि

---

1 दर्शनेच्छां करिष्यन्ति, दृश धातोः सनि।

यदि सम्पादयेत् तर्ह्यपि महती उपकृतिः स्यात् संस्कृतसमाजस्य। यत्र च समितौ श्रीमत्समानाः प्रभूतप्रभावा महानुभावाः, सर्वस्य संस्कृत-विभागस्य च शुभः सहयोगस्तत्र न किमपि दुर्लभम्– इत्यपि मेऽस्ति दृढो विश्वासः..।

अतो भूयोऽपि साम्रेडं क्षमां याचमानोऽयं स्वकीयो जनो सविनय-मिदमेवावेदयते यत् सर्वप्रथमं श्रीमत्या संस्कृतविद्यासमित्या महत्या दत्त-चित्तयात्र भाव्यं संस्कृतज्ञानां कार्यक्षेत्रवर्धनकर्मणि। केवलं सुन्दरतमाया व्याकरणपाठनप्रणाल्या गौरवेणैव न विद्यार्थिनः संस्कृतकक्षायामागमिष्यन्ती-त्यपि वावदीमि। अनया प्रणाल्या कर्मण्यस्मिन् बलाधानन्त्ववश्यं भविष्य-तीति सुतरां श्रीमतामेष व्याकरणाध्यापनस्य नूत्नतमो नहि नहि प्रत्नतमो निरवद्यश्च आविष्कारप्रकारः। 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः' इति काव्य-विदां समयमनुसृत्य सर्वं एव विद्वत्समाजः प्रकारमिमभिनन्दिष्यति। ये हि साम्प्रतं संस्कृतव्याकरणस्य सारल्याय[1] स्पृहयन्ति ते त्वश्यमेव "वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम्" इति माघीयं पद्यं प्रमाणीकृत्य केनापि अज्ञातेन प्रभावेण वशीकृता इव स्वीकृता इव, आवेशिता इव, वशंवदा इव वा प्रकारमिमनुसरेयुः।

अस्य प्रकारस्य प्रचुरः प्रचारः परितः स्यादिति कामयमानः—

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीसुधीरकुमार गुप्त
संस्कृतविभागाध्यक्ष,
राजस्थानविश्वविद्यालय,
जयपुर

1 स्पृहार्थे चतुर्थी।

३७

परमार्थनिकेतनम्
स्वर्गाश्रमः, हृषीकेशः
(कमरा नं० १३६)
ता० २८-५-६६

श्रीयुत-पण्डितराजान् दिविषद्वाचां प्रचारणे लग्नान् ।
श्यामकुमाराचार्यान्त्सुहृदः प्रणमत्ययं नवलः ॥१॥

जयपुर-नगरे भवता मां समया प्रेषितस्य पत्रस्य ।
प्रहितं समुचितमुत्तरमिदमवलोकयतु भवान् मान्य ? ॥२॥

भवतां पत्रं पठितं सुविदित उदन्तश्चाखिलो मयका ।
यदकुर्वन् हि भवन्तो मुज्जाता तेन मे मनसि ॥३॥

जयपुरनगरे सप्तममधिवेशनमग्रिमे भवेद् वर्षे ।
श्रीमद्भिर्यल्लिखितं तत्तु समुचितं मम्मन्ये[1] ॥४॥

किन्त्वेतेन समं या राज्ञेवाज्ञा प्रचारिता सहसा ।
ननु विंशतिशतमुद्रा सञ्चयनीया मयैतस्मै ॥५॥

सेयं भवतामाज्ञा हन्त ! न परिपालयिष्यते मयका ।
जानन्त्येव भवन्तः केवलमहं लेखने शूरः ॥६॥

अद्यत्वे खलु पणमपि कस्यापि कृते कृतेऽप्यहो धाष्टर्चे ।
वितथं[2] ब्रवीमि नाहं शैशवेऽपि नैव याचितवान् ॥७॥

अधिवेशनमिह कर्त्तुं यद्यार्थिकसहायतां कामम् ।
वितरिष्यन्ति भवन्तस्तदैव सम्पत्स्यते कार्यम् ॥८॥

भवतां कृते तु सुलभं सरलञ्चैतत् सहायतादानम् ।
विश्वासोऽस्ति ममायं शौर्यं भवतां यतो दृष्टम् ॥९॥

मनसो मम दौर्बल्यं भिक्षावृत्तेर्विमुखतां वेमाम् ।
कथयतु किमपि श्रीमान्, यत् सत्यं तत् तु सत्यं वै ॥१०॥

आयुष्मान् मम तनयो नारायणोऽप्यथ याचनावृत्तौ ।
निश्चप्रचं न कुशलो देयाऽन्या कापि योग्याऽऽज्ञा ॥११॥

---

1. मन् धातोर्यङि रूपम् । 2. असत्यम् ।

निर्जनभूमौ स्थित्वा श्रीमन्तश्चिकीर्षन्ति यत् कार्यम् ।
सफलं करोतु भगवान् कार्यं तच्छ्रीमतां शीघ्रम् ।।१२।।

सम्प्रति मासं यावत् 'परमार्थनिकेतने' वसंस्त्वत्र ।
स्वर्गाश्रम-सुख-भोगं पत्न्या सहितो लभे नित्यम् ।।१३।।

एका नूतनरचना क्रियतेऽत्र च शान्तिपूर्वकं स्थित्वा ।
अन्यश्चैको लाभः प्रतिदिनमिह वर्धते स्वास्थ्यम् ।।१४।।

एवं विलिख्य नवलः काङ्कुरपदलाञ्छितो द्विजो गौडः ।
स्वर्गाश्रम[1]मधितिष्ठन् याचति करुणादृशं सुहृदः ।।१५।।

नवलकिशोरकाङ्कुरः

म० म० श्रीश्यामकुमार आचार्य
१०B सरकारी कोठी, गौंडा (उत्तरप्रदेश)

1. 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति द्वितीया ।

३८

परमार्थनिकेतनम्
कमरा नं० १३९, स्वर्गाश्रमः
हृषीकेशः
ता० १०-६-६९

श्रीमत्सु साहित्यार्णवकर्णधारेषु विद्वद्धौरेयेषु सुहृद्वर्येषु श्रीजगदीश-शर्म-साहित्याचार्येषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

अयि सहृदया महोदयाः,

भवतां शुभमुदन्तमुपलभ्य कामप्यमन्दां मुदमलालम्भम्। …………। कथमिह श्रीमन्तो मदुदन्तप्रश्ने सङ्कोचमञ्चन्ति ? अनियन्त्रणानुयोगोऽयमन्तरङ्गजनः …………………………। यावद्रैलप्रस्थानं तु भवतां प्रत्यक्षमेव मदीयं वृत्तम्। ततः स्वल्पमेव लेखनीयमवशिष्टम्। दयिताद्वितीयोऽहं यदा बाष्पयानमारुह्य कौबेरीं दिशमभ्यचलंस्तदा भवदादीनां वियोगजन्या व्यथा तु पीडयन्त्येवासीत्। किन्तु यथा यथा तद्यानं पवनजवं जेतुमिव प्रबलेन वेगेन गन्तुं प्रावर्त्तत तथा तथाऽस्मन्मनसि रत्यादिभावमाला इव वासनानिहितास्तदाश्रम-सम्बन्धिन्योऽनल्पाः कल्पनाः प्रतिक्षणं जायं जायं त्वरितं तदवाप्तुं प्रेरयन्ति स्म ……… ……………………………। हरितवसना स्वर्गाश्रमीया वसुमती कदा लोचनगोचरी भविष्यतीति ध्यायं ध्यायं ………………मयका ………………सायं देहली-नगरमगम्यत। रात्रौ चातिथिशालायां विशालायां विश्रम्य कौवेरीं काष्ठां मानसरस्तीरे सन्ध्योपासनमिव विधातुं प्रस्थिते सप्तर्षिमण्डले………………यमुनायां स्नातुं प्राचलम्। अभिषेकोत्तरञ्च सिकतिलपुलिने तत्र समाप्तपूजापाठः कृतप्राशराशश्चामध्याह्नं नगरेऽभ्रमम्।………………उदयगिरिसिंहासनं विहाय विहायस्तलमलङ्कुर्वति च कलानिधौ ततः प्रस्थाय द्वितीयस्मिन्नहनि पूर्वाचलाञ्चलं स्पृशति जगत्प्रबोधप्रारम्भमङ्गले मिहिरे हरिद्वारं समागच्छम्। तत्र दिनद्वयं ……………… गाङ्गास्तरङ्गा अनुभूयात्र………… परमार्थनिकेतनेऽपि ससुखं समुष्यते सम्प्रति।

यद्यप्यत्र महत्येव प्रत्यूषे सौस्नातिकानां तुमुलेन कर्णकटुकोलाहलेन निद्रा विद्राव्यते तथापि ……………… कस्याप्यपूर्वानन्दथोर्विजृम्भणं जाजायते…………। ततः …………गङ्गायां सह कुटुम्बिन्या कृतधर्माभिषेकनैयमिकावश्यकक्रियेण मया………… सन्ध्योपासन-पाठपूजादिकं विधीयते।

..................तदनन्तरं सुखस्पर्शनः स्पर्शनः परिसेव्यते, पथि च प्रायः प्रतिदिनमेव रामबावाभिधः कश्चन..................कन्दरायामेकस्यां संवसन्नध्यक्षीक्रियते । ....अस्मिन्नेव समीरसेवनान्तरालकाले कतिचन भाग्यशालिनो जना यदा कदा यत्र कुत्र मत्तमतङ्गजाकारभयङ्करासु कन्दरासु कृतावासानां धर्माभिषेकक्रियाकैतवेन च विविक्ते गङ्गाकूले समागतानां.................. महीयसां तपोजुषां दर्शनेनात्मानं पावयन्ति.................. ।

गौरीगुरोः पावनं पवनं परिसेव्य समागतेन मया किञ्चिद् विश्रम्य ....सुरसवत्यः कुण्डलिन्योऽप्यास्वाद्यन्ते जठराग्निशक्तिमुद्वीक्ष्य । ततः स्वाध्यायो विधीयते । मध्याह्ने..................व्यञ्जनादिकेनाकण्ठमुदरदरी परिपूर्यते । तत्पश्चात् स्वल्पं विश्रम्य स्वपितिसुखञ्चानुभूय वृत्तपत्रादिकं गोचरीकृत्य पुस्तकलेखन-पत्रप्रेषणादिकानि कर्माणि नियमितरूपेणानुष्ठीयन्ते ।

अथ सायं पुनः समासन्नाह्निकसमयेन..................वारिविहारामोदः सञ्चीयते मया । दिवसेष्वेषु गङ्गातटीयः सायङ्कालिकः शोभनतमः समयः कस्य वाधन्यस्यापि चेतसि ब्रह्मावाप्तिसहोदरं सातिशयं शातं न जनयति ? किमन्यत् ....जह्नुकन्यायां साम्रेडमुत्पद्यमाना विलीयमानाश्च विमला वीचिमाला अपि दरिद्राणां वाञ्छा इव प्रतीयन्ते । एवं सायङ्कालिकं नन्दनोद्यानमिव स्रवदमरसरिदानन्दसन्दोहं चायं चायं .... निकेतनं प्रत्यावृत्य सायमशनञ्च विधाय सार्धनववादनं यावत् तत्राभिमुखं भगवतः प्रार्थनायां सम्मिल्य दशवादनात् पूर्वमेव.................. प्रासादपृष्ठे सुखस्वापं कुर्वन्नपि स्वप्ने तान्येव बुद्धिसात्कृतानि दैनिकानि दृश्यानि साक्षादिवानुभवन् रात्रिन्दिवं तामेवामन्दां मुदं लालभ्ये ।

..................। अथान्येद्युः प्रभाते हरिकरैरभितस्तिमिरकरिकुललोपं विलोक्य मनसि निजशश-विशमनभयेनैव पलायमाने कुमुदबान्धवेऽत्रत्याः कतिचन यात्रिणो.................. नीलकण्ठस्य दर्शनार्थमुदचलन् । अहमपि पत्नीद्वितीयो विहितनिश्चयो .... तानन्वगच्छम् .... । मध्याकाशमुपगतवति भगवति विवस्वति सर्वे वयं नीलकण्ठशिखरमगमाम । तत्र गत्वा तु ....कमप्यद्भुतं सुखसमवायमलालम्भ ।.................. अत्रैव वयं .... भगवन्तं नीलकण्ठञ्च जलेनाभिषिच्य साकमानीतेन कौष्माण्डभोज्यवस्तुनोदरदेवमभ्यर्च्य .... ततः प्रचलिताः । ....निकेतनं समागच्छति त्वस्मन्मण्डले यावद्..................

भास्वानस्तमगच्छत्..................तावद्द्वयमपि.................. सायङ्कालिकं ....कृत्यजातं सम्पाद्य..............निद्रादेव्या विशदेऽङ्के शयितु-मगच्छाम ।

एवमहमत्र ....सद्यः परनिर्वृत्ति लभे । सह सहधर्मिण्याऽत्र निवसतो मे त्रिगुणानि पञ्च दिनान्यवसितानि । .... यद्यपि मयाऽत्र ....स्वर्गसुखमेवानुभूयतेऽनुदिनम् परन्त्विवदन्त्वनुभवाम्येव—

वरीवृषति वारिदाः क्रमुककल्प-विन्दुव्रजै-
र्विबोभुवति गर्जना मधुरमन्द्रसान्द्रस्वनाः ।
सरीसृजति यद्यपि प्रकृतिरप्यमन्दां मुदं
तथापि भवतो विना प्रियवरा ! न शान्तेः कणः ॥१॥

शेषं सर्वविधं कुशलमविकलं वर्त्तते, भवताऽथ वृत्यताम्, आयुष्मन्तो बालाश्चाशीर्भिरभिनन्द्यन्ताम् । इदमप्यस्तु—

युष्माकं भ्रातृपादेषु मुनिकल्पमहात्मसु ।
मदीया नतयः सन्तु युष्माभिर्विनिवेदिताः ॥२॥

इहाधिकादधिकं दिनद्वयं तिष्ठासामि । .... गङ्गोत्तरीययात्रां सम्पाद्य..........शीघ्रमेव तत्र भवदादीन् द्रक्ष्यामीति सूचयति—

यौष्माकीणोऽयं सुहृत्
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीजगदीशजी शर्मा साहित्याचार्य
(सेवानिवृत्तसाहित्यविभागाध्यक्ष,
जयपुरमहाराजसंस्कृतकालेज)
कल्याणजी का रास्ता, चांदपोलवाजार, जयपुर

३९

जयपुरम्
ता० २०-८-६९

जयन्ति जगतां शश्वदनन्तश्रीविभूषिताः ।
पूज्यश्रीमाधवानन्द-पादपङ्कजरेणवः ॥१॥

श्रीमतां योगिसम्राजां चरणोत्पलयोर्मम ।
प्रणामाः षट्पदायन्तामनन्ताः श्रद्धयार्ऽपिताः ॥२॥

मान्यैर्यत् प्रहितं दयादलमलं कालाद्बहोस्तन्मया
लब्ध्वा पूर्वजनुःसुसञ्चित-महापुण्योदयोऽमन्यत ।
मान्यानां करुणाकणेन सकलं क्षेमं वरीवर्त्ति मे
किन्त्वप्राप्य गुरोर्हि दर्शनसुखं चेखिद्यते चेतसा ॥३॥

यो दुष्टरोगेण भृशं वितुन्नो
भवत्सुतः श्रीहरिरर्भको मे ।
सोऽयं भवद्भिर्गुरुभिः समर्थै-
रुपेक्ष्यते हन्त ! कथं वराकः ॥४॥

दयादृशा कर्त्तुमकर्त्तुमीशाः
श्रीमन्त एवैनमलं शुभंयुम् ।
चिकित्सितुं सन्ति सदैव शक्ताः
केयं पुनर्हा विचिकित्सिताऽस्ति ॥५॥

अतः किमपि सम्प्रेष्य कृपयन्तु महौषधम् ।
कुर्वन्तु मन्त्रशक्त्यैनं नीरोगं तत्र वा स्थिताः ॥६॥

इदमेव हि साम्रेडं नामं नामं निवेदये ।
पादाब्जचञ्चरीकोऽहं नवलो विनताननः ॥७॥

नवलकिशोरकाङ्करः

महामहोपाध्याय
स्वामी श्रीमाधवानन्दजी महाराज
करजनरोड, बंगला नं० ७
नयीदिल्ली

४०

जयपुरतः
ता० २२–७–७०

कारुण्य - पूराञ्चित - मानसानां
श्रीमाधवानन्द - मुनीश्वराणम् ।
पादारविन्देषु सदा मदीया
भक्तिप्रयुक्ता नतयो लसन्तु ।।१।।

अयि कृपापारावार - सम्प्लावितान्तःकरणाः श्रीगुरुदेवचरणाः !!

श्रीचरणैः परमभक्तश्रीनेमिचन्द्रमहाशयद्वारा प्रहितानि चतुःशतरूप्यकाणि लब्धानि । मुद्रणयन्त्रालय-स्वामिना साग्रेडं कृतायां परमशीघ्रतायां मया तस्मै कतिचन दिवसेभ्यः पूर्वमेव सर्वाणि रूप्यकाणि दत्वा व्यवहारः सम्पादितः । अतएव मया गुरुपूर्णिमावसरे प्रेषिते वन्दनापत्रे न तद्विषयिणी कापि चर्चा कृता । समये समये पूर्वं तद्विषयिणी या धृष्टता मया समाचरिता सा करुणावरुणालयैः सदयहृदयैः श्रीमद्भिः क्षम्या, अवशिष्टश्च द्रव्यराशिः कदापि न प्रेष्यः – इति सानुनयं निवेदये, यतोऽहमपि दासेष्वन्यतम एव, ममापि यथाशक्ति सेवाकरणस्याधिकारः ।

श्रीमतां जीवनदर्शनस्य एकसहस्रपुस्तकान्यपि पृथग्रूपेण प्रकाशितानि, तानि श्रीमद्भ्यो जयपुर एव निवेदयिष्ये । रूप्यकाणि दत्वा यन्त्रालयात् तानि मया समानीतानि । मम गृहे वर्त्तन्ते च तानि ।

पूर्वं जयपुरे समागतानामपि योगिराजानां श्रीमतां पावनदर्शनादहं वञ्चित इति वार्त्ता तु स्मृतिपथमायाता वात्या इव समुद्वेलयति चेतो हठात् । अधुना कदा तत्रभवन्तो भवन्तः श्रीमन्तो दयावन्तो दर्शनं वितरिष्यन्तीति जिज्ञासते मनः । विश्वसिमि च, साम्प्रतं तु पूर्वं सूचनां दत्वा कृतार्थयिष्यन्ति श्रीमन्तः । आयुष्मान् नारायणः सविनयं साष्टाङ्गपातं निवेदयते ।

श्रीमच्चरणचञ्चरीको
नवलकिशोरकाङ्करः

महामहोपाध्याय
स्वामी श्रीमाधवानन्दजी महाराज
करजनरोड, बंगला नं० ७
नयीदिल्ली

जयपुरतः
ता० २५–७–७०

श्रील[1]श्यामकुमार-वन्धुमणयो जीवातवः[2] स्वर्गिरां
यातेऽनेहसि साम्प्रतं बहुतिथेऽप्याप्तं न युष्मद्दलम् ।
को हेतुः ? कटुकारणञ्च किमहो ? का वास्ति वार्त्ता नवा ?
किं रुग्णा अभवन् भवन्त ? इति सञ्चिन्त्यैव तुन्नो[3]ऽस्म्यहम् ॥१॥
रुष्टाः प्रकृष्टा अथवा भवन्तो जाता वृथैवेत्यपि संशयो मे ।
यतो भवद्भिः प्रहितं दलं यत् तत् तादृशं भावमुपासते स्म ॥२॥
जानन्ति किन्तु प्रभवो भवन्तो नारायणो मे तनयः सदैव ।
गीर्वाणवाणी-प्रणयात् सतो[4] हि श्रद्धादृशैवात्र दरीदृशीति ॥३॥
उक्तञ्च तेन, प्रहिते दले तु विस्फारिता गूढमशुद्धयो याः ।
यन्त्रालयीया अधिकाः समा[5]स्ता न तेन भाव्यं कुपितैर्भवद्भिः ॥४॥
भवादृशानां विदुषामशुद्धं विलोक्य लेखं शयनेऽपि[6] कश्चित् ।
चरीक्रियान्नो भवतामवर्ण-[7] मेवं विचार्यैव कृतं तदेततत् ॥५॥
जानन्तु वा विज्ञवराः, भवत्कृता आर्षप्रयोगाः सकला हि सन्ति ते ।
यतो भवन्तो मुनिनिर्विशेषका नूत्नास्तथा पाणिनयश्च सन्त्यहो ॥६॥
प्रसङ्गतः सन्धि-समासचर्चा चापि स्वभावाद् विहिता दले या ।
सोपेक्षणीया, न हि तत्र कश्चिद् दुराग्रहोऽस्तीत्यपि जाज्ञतु प्रियाः ॥७॥
अन्यच्च—
श्रीमल्लोकगुरोरपूर्वकृपया स्वस्थोऽस्म्यहं सान्वयः,
किन्तु ज्येष्ठसुतस्य मे, सहचरी नारायणस्याधुना ।
रुग्णा वर्त्तत एव हन्त ? परमा, तेनेह रात्रिन्दिवं
सर्वैरेव कुटुम्बिभिः प्रतिपलं तुन्नैरलं स्थीयते ॥८॥
कृत्वैद्-हृदि सर्वं हि भवन्तः सन्तु सुस्थिराः ।
झञ्झावातेऽपि महति गिरयो न चलन्त्यतः ॥९॥
अविहितकालक्षेपं कुशलोदन्तं भवन्तो लेलिखतु ।
काङ्करनवलकिशोरः सूचयति श्रीमतो भूयः ॥१०॥

भवदीयो
नवलकिशोरकाङ्करः

म० म० श्रीश्यामकुमार आचार्य
पारीखबिल्डिंग, सैंट्रलजेल रोड, वाराणसी-2

1. श्रीयुत, 2. संजीवनौषधभूताः, 3. दुःखितः, 4. पण्डितान् भवतः, 5. ताः सर्वाः
6. स्वप्नेऽपि, 7. निन्दाम् ।

४२

जयपुरतः
२६–११–७०

श्रीमत्सु विद्वत्तल्लजेषु श्यामकुमाराचार्यमहाभागेषु समुल्लसन्तुतरां
स्नेहसंवलिता नमस्काराः ।

विद्वन्मूर्धन्याः,

इदानीमेव श्रीमतां पत्रं करगतं जातम् । न इतः पूर्वं किमपि पत्रं समासादितं मयका । यद् भवद्भिः पूर्वं पत्रमेकमभिनन्दनग्रन्थविषयकं प्रेषितं तस्य तूत्तरं १३–११–७० दिनाङ्के प्रहितमेव । आश्चर्यस्यायं विषयः, यत् मया यानि पत्राणि प्रहीयन्ते न तानि भवद्भिः प्राप्यन्ते, न च श्रीमद्भिर्यानि पत्राणि प्रेष्यन्ते तानि मया अत्र लभ्यन्ते । अवश्यमत्र विशेषेण कारणेन भवितव्यम् । अस्तु ।

जनवरीमासस्य २-३-४ दिनाङ्केषु वाराणसेय-संस्कृतविश्वविद्यालय-प्राङ्गणे विश्वसंस्कृतसम्मेलनं सम्पत्स्यते इति तु महती मोदावहा वार्त्ता । स्वसमितिकृते श्रीमन्तः सर्वसमर्था अनुभवकुशलाश्च सन्ति । स्वागताध्यक्ष-कृते तु स्थानीयेषु परमप्रतिष्ठेषु धनिकवर्गेषु कश्चन वरणीयः । स्वागतमन्त्रि-पदकृते त्ववश्यं कश्चित् तत्रत्यः प्रसिद्धो विद्वान् भवेत् । स्वागताध्यक्षोऽपि यदि धनवान् विद्यावान् च भवेत् तर्हि रत्नकाञ्चनसंयोगः स्यात् ।

धनव्ययकृते का व्यवस्था भविष्यति—इत्यत्र श्रीमन्त एव प्रमाणम् । मन्ये, श्रीमतां सौजन्येन विपुलेन प्रभावेण च अवश्यं हि तत्रत्याः श्रेष्ठिनः, राजकीयाः पुरुषाश्च आर्थिकसाहाय्यम् आचरिष्यन्ति ।

विगतरविवासरे मम अष्टवर्षीयो दौहित्रो हर्म्यपृष्ठात् अधः प्राङ्गणे निपत्य मृतः—इति वयं सर्वे परमशोकाकुला व्यथितहृदयाश्च स्मः । अस्मिन् एव व्यतिकरे पादस्खलनात् अहं पंगुर्जातः । इदानीं यष्टिकाम् अवलम्ब्य एव इतस्ततो भ्रमामि । अतो दिसम्बरमासस्य प्रथमसप्ताहे साम्प्रतम् अहं तत्र उपस्थातुं सर्वथा आत्मानम् अयोग्यम् अवगच्छामि । दिसम्बरमासस्य २३ दिनाङ्कं यावत् अहम् अवश्यं तत्रागमिष्यामि, सम्मेलन-दिनान्तं च स्थास्यामि । आयुष्मान् नारायणोऽपि अवश्यम् आयास्यति ।

यदि ममागमनं विना तत्र न किमपि भवति, तदा सूचनीयोऽहम् ।

साम्प्रतं यादृश्यां दशायां वर्त्ते तादृश्यामेव तत्र उपस्थातुं यत्नं करिष्यामि ।

सर्वतः प्रथमं समाचारपत्रेषु समितेः सूचना देया। विज्ञापनं पूर्णरूपेण भवेत्। स्वागतसमितेः सम्पादनाय विज्ञापनदानस्य न कापि आवश्यकता। एतत्कृते तु श्रीमन्तः स्वयं तत्रत्यान् स्वानुकूलान् विदुषो नागरिकप्रवरान् च समाहूय तच्चयनं कुर्वन्तु।

निमन्त्रणपत्रे आवयोर्नाम्ना सह स्वागतध्याक्षस्य स्वागतमन्त्रिणश्च नाम भवेत्, अथवा निमन्त्रणपत्रे मम नाम्नो नास्ति आवश्यकता, यद्-भवद्भ्यो रोचते वा।

निमन्त्रणपत्रं निर्माय अहं पृथक् पत्रे प्रहिणोमि। कार्यक्रमोऽपि मया तत्र लिखितः। अत्र भवन्तः परिवर्त्तनं कर्त्तुं शक्नुवन्ति।

यदि वाराणसेय-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य उपकुलपतिः स्वागताध्यक्षः स्यात् तर्हि सुन्दरं भवेत्।

यदि इदं समिति-सम्मेलनं विश्वसम्मेलनं वर्त्तते तर्हि विदेशीयाः अपि आहूयेरन्।

विभिन्नराजदूतानां, मन्त्रिणां, राज्यपालादीनां, प्रधानमन्त्रिणः, अन्येषामपि विश्वविद्यालयाध्यक्षादीनां सन्देशा लभ्याः। अस्य उद्घाटनकृते कश्चन केन्द्रीयमन्त्री, शिक्षामन्त्री, उत्तरप्रदेशमुख्यमन्त्री वा आनेतव्यः।

यदि रेल्वे-कन्सेशनव्यवस्था भवेत् तर्हि तत्कृतेऽपि प्रयत्नः करणीयः।

अस्य सम्मेलनस्य सभापतिः को भविष्यति? कश्चन प्रसिद्धविदेशीयो विद्वान् वा भारतीयो भवेत्। भारत-शिक्षामन्त्री अपि एतत्कृते समुचितः।

अस्य अवान्तरीयसम्मेलनानाम् अपि सभापतयः सुप्रसिद्धा विद्वांस एव करणीयाः।

मत्कृते यद्यन्यदपि कार्यं भवेत्, तर्हि लेख्यं शीघ्रतरम्। यदि सम्प्रति मम तत्रागमनमपि परमावश्यकं भवेत् तदापि लेख्यम्, अहम् अवश्यम् आयास्यामि।

शेषं कुशलम्।

भवदीयो

नवलकिशोरकाङ्करः

महामहोपाध्याय
श्रीश्यामकुमाराचार्य
पारीखबिल्डिंग, सैंट्रलजेल रोड
वाराणसी-२

४३

जयपुरम्
ता० २-१२-७१

मिथिला-संस्कृति-विकसन-परिषन्मन्त्रिषु श्र्यमरनाथेषु[1]।
नवलकिशोरप्रहितं विलसतु नमनं शुभोदर्कम्[2]॥ १ ॥

श्रीमन्मन्त्रिमहोदय ? प्रविलसद्विद्या-विलासोदय !
पत्रं प्राप्य कृपाञ्चितं हि भवतोऽलप्सि[3] प्रमोदं हृदि ।
मैथिल्याः शुभसंस्कृतेः परिषदः पूर्णप्रचाराय यत्
प्रारब्धं शुभकर्म तत्र भवता तच्छोभनं शोभनम् ॥ २ ॥

[4]स्वं साहाय्यकृते मया जयपुरात् सम्प्रेष्यते निश्चितं
निश्चिन्वन्तु परन्तु तत्र दिवसांस्तस्याः सभायाः कृते ।
पूर्णं पल्लविता विचारनवता-पूताः सतामादृता
बोभूयासुरलं सभासुकृतयः[5] श्रीमत्प्रयत्नैः समाः ॥ ३ ॥

चिन्मयी मैथिली माता [6]तन्तनीतुतरामयम्[7] ।
इति कामयते नित्यं नवलः काङ्करः कविः ॥ ४ ॥

नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीयुत अमरनाथ झा
मन्त्री, मिथिलासंस्कृतिविकासपरिषत्
मधुवनी (विहार)

---

1. श्री+अमरनाथेषु—इति सन्धिविच्छेदः । 2. शुभफलप्रदमित्यर्थः ।
3. अहं लब्धवान् । लभ् धातोर्लुङि रूपम् । 4. धनम् । 5. कार्याणि ।
6. तनुतात् [illegible] । 7. अयं—[illegible] ।

४४

जयपुरम्
ता० १८–१२–७१

श्रील-श्यामकुमाराचार्यप्रवरेषु मित्रवर्येषु ।
विलसतु सुललितमनसा विहितं नमनं मदीयं हि ॥ १ ॥

हा हन्त हन्त भगवन्त ? इदं नितान्तं वृत्तं यदस्ति विकृतं, निभृतं न तद्धि ।
शान्ता अपि प्रथितसन्मनसोऽपि नित्यं मन्दादरा मम कथं प्रणये प्रजाताः ॥२॥

साहित्य-गद्य-प्रतियोगितार्थं यात्राविलासाभिधगद्यकाव्यम् ।
प्रौढेन हृद्येन तथाऽनवद्य–गद्येन सङ्गुम्फ्य मया श्रमेण ॥३॥

सम्प्रेषितं पृष्ठशतात्मकं यत्त्वद्यापि तस्याप्तिदलं भवद्भिः ।
प्राप्यापि मत्तः स्मरणप्रपत्रं कथं न हन्त प्रहितं स्वपत्रम् ॥४॥

कर्मण्यमुष्मिन् सहयोगदानाभावादभूवन् शिथिला भवन्तः ।
जानन्तु किन्तु प्रमुखाः सखायो मलीमसामाददते न मार्गम् ॥५॥

फल्गु[1] प्रवादेन तु नौ वृथैव सनातनः सद्व्यवहार एषः ।
न भस्मसाद्धन्त भवेत् सदेति ह्यलेलिखं वच्मि पुनस्तदेव ॥६॥

स्वशक्तिमुद्वीक्ष्य तु यन्मयाऽपि करिष्यते कालसमर्पणं तत् ।
नूनं करिष्ये मनसा च वाचा [2]जाज्ञीयुरित्यप्यविलम्बमेव ॥७॥

वाञ्छाम्यहं पातयितुं न किञ्चित् तत्कार्यभारस्य कणं भवत्सु ।
अतः प्रहृष्टान्तरतो भवन्तो भवन्तु शान्ताश्च दलं लिखन्तु ॥८॥

प्रधानमन्यं सबलं वदान्यं कमप्यरं[3] स्वस्थतरं कवीशम् ।
चरीकृतु प्रोन्नतये समित्या इत्यादिकं चापि मया [4]पुरूक्तम् ॥९॥

अहन्तु गीर्वाणगिरां प्रचारे सार्धं भवद्भिः सततं सहर्षम् ।
स्थास्यामि वत्स्यामि विनाऽपि लब्धि जानन्तु निश्चप्रचमेतदेव ॥१०॥

अतोऽधुना तु धीमन्तः श्रीमन्तः परमां मुदम् ।
लब्ध्वा लिखन्तु मल्लेखप्राप्ति प्रार्थयते त्वयम्—॥११॥

नवलकिशोरकाङ्करः

म० म० श्रीश्यामकुमाराचार्यः
सेंट्रलजेलरोड, वाराणसी

---

1. व्यर्थविवादेन, 2. जा धातोर्यङ्लुकि विधिरूपम्, 3. शीघ्रम्, 4. पुरु=बहु ।

४५

जयपुरम्
ता. २५-८-७३

श्रीमत्सु सारस्वतसहोदरेषु विद्वत्पुरन्दरेषु श्रीभाईशङ्करपुरोहित-प्रवरेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः ।

धन्यातिधन्या विज्ञमूर्धन्याः,

वर्षेऽस्मिन् विश्वविद्यालयविद्यार्थिनां राज्यकर्मचारिणाञ्च दुरान्दोलनेन प्रक्रान्ते सप्ताह एव ग्रीष्मावकाशसमयः समाप्तः साम्प्रतं राजस्थाने । अत एव परीक्षणादिकर्मजातं सम्पाद्य जयपुराद्बहिर्गतोऽहमप्यस्मिन्नेव सप्ताहारम्भेऽत्र समायातोऽस्मि । समेत्य ४.७.७३ दिनाङ्काङ्कितं श्रीमतां पत्रमेकं विलोक्य यावदहं तदुत्तरं प्रेषयितुं प्रवृत्तस्तावदेवाद्य २३.८.७३ दिवसलिखितं श्रीमतां स्नेहसिक्तमपरं पत्रं लब्ध्वा काममप्यमन्दां मुदमन्वभवम् ।

मान्याः,

सोऽयमुपाधिलाभो मे तु श्रीमत्सदृक्षाणां प्रतिप्रान्तमकारणाविष्कृत-सौजन्यानां विद्वद्बन्धूनां शुभसहयोगस्यैव परिणामः । अव्यभिचारिणीयं[1] शास्त्रोक्तिः— "अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः" इति । नाहमेतत्कृतेऽभिनन्दनीयः । अहन्तु भगवत्याः सुरसरस्वत्याः सर्वथाऽकिञ्चनकरश्चरणकिङ्करः । यद्भवद्भिरहं केनापि रूपेण स्मृतिपथमानीतस्तदर्थं सहस्रशो धन्यवादाः ।

वर्षेऽस्मिन् विगते वा हायने[2] येषु संविदङ्केषु[3] मम चिरायुषो नारायणस्य च ये लेखाः प्रकाशितास्ते संविदङ्काः प्रेषणीयाः । नाहमिह नियमितरूपेण तानाप्नोमि साम्प्रतम् ।

श्रीमतां सविधे मया यत्पुस्तकं प्रहितमासीत् तत्सन्दर्भे पुनः श्रीमन्तो निवेद्यन्ते, यद्भवनीयपरीक्षासु यत्र कुत्रापि तन्निवेशो भविष्यति मम सौख्यकरः ।

वर्षेऽस्मिन् स्वायुषः षष्टिवर्षाणि समुल्लङ्घ्य महाविद्यालयतो गृहीतविश्रामोऽपि कालेजप्रबन्धकानां विश्वविद्यालयाधिकारिणाञ्चानु-

1. सत्या । 2. वर्षे । 3. संविद्नाम्न्याः संस्कृतपत्रिकायाः ।

मत्या पुनरेकवर्षंकृतेऽत्रैव कार्यं कर्त्तुं प्रवृत्तोऽस्मि । आगामिनि वर्षे तु निश्चितरूपेण कालेजकार्यं परित्यज्य शारदासेवायामेव प्रवर्त्स्यामीति ।

केन्द्रसञ्चालनसम्बन्धे भावत्कं वृत्तमधीत्य नातिविशेषं विस्मयमकार्षमहम्, श्रेयांसि बहुविघ्नानीति प्राचामुक्तिः सर्वथा सत्यानुप्राणिता वरीवर्त्ति । मया तु पूर्वमेव श्रीमन्तः सूचिताः, यत् प्रतिपदं केन्द्रस्थापनं नैव श्रेयस्करमिति । अस्यां स्थितौ यदि तेऽधिकारिणस्तदपनयनं शोभनं मन्यन्ते तर्हि तथा कुर्वन्तु । यतः —

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-
दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्धया ।
तस्यैव गण्डयुग-मण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुर्नविकचपद्मवने चरन्ति ॥

इत्येव निवेद्य विरमति भवतां बाह्यमाभ्यन्तरञ्चानामयं कामयमानो—

नवलकिशोरकाङ्करः

आचार्य—
श्रीयुत भाईशङ्करपुरोहित
भारतीयविद्याभवन,
चोपाटी रोड, बम्बई–२०

४६

जयपुरम्

ता. २०-१२-७३

आयुष्मन् शिवदत्त ! पूज्यजनक-प्रस्पर्धि-वाग्वैभव !

व्यस्मार्षीत् स्ववचो भवान् किमु यतः सम्प्रेषितं नोत्तरम् ।

तद्भूयोऽपि विलिख्यते यदधुना स्वल्पं हि लब्ध्वा क्षणं

वैशद्येन मनोगतं निजमिहोपेक्षां विना प्रेषयेत् ।।१।।

इयमपि चान्या वार्त्ता परमावश्यकी वर्त्तते नितराम् ।

तत्रापि प्रथमं समतोऽवधानमावश्यकं[1] भवतः ।।२।।

बलदेवोपाध्याया अवदन् ये स्वसम्मतिं प्रेषयितुम् ।

त्वरितं तदर्थमधुना साम्रेडं प्रार्थनीयास्ते ।।३।।

मध्येकाशीनगरं ते यन्मामवोचंस्तदर्थं हि ।

स्मारयतुतात् तत्कथनं मन्नाम्ना सानुरोध तान् ।।४।।

यद्यपि कर्मणि चास्मिन् समयः श्रमश्च विनंक्ष्यतः कामम् ।

तदपि न भवता सुहृदा सन्त्याज्यः सोऽयमारम्भः ।।५।।

अधिकं किमिह लिखेयं विदितबुद्धिवैभवे स्वकीये हि ।

कार्यमरं[2] साध्यमिदं भवता तु केनापि यत्नेन ।।६।।

एवं लेखं लेखं[3] प्रतिपलमुत्तरं प्रतीक्षमाणश्च ।

विरमति दललेखनतो नवलकिशोरकाङ्करः कोऽपि ।।७।।

नवलकिशोरकाङ्करः

डा. शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी

साहित्याचार्य

साहित्य प्राध्यापक–

काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी ।

---

1. सर्वतः । 2. शीघ्रम् । 3. लिखित्वा लिखित्वा, णमुल्प्रत्ययः ।

४७

जयपुरम्
ता० २५-१२-७३

श्रीमत्सु वैदिकविद्या - सुराचार्येषु[1] परमात्मीयबन्धुषु तत्रभवत्सु म०म० श्रीभगवत्प्रसादाचार्येषु सम्मुलसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः ।

सम्मान्या बन्धुमूर्धन्याः,

गतदशहरावकाशावसरे स्व० गुरुवर-श्रीमधुसूदनमैथिल-महाभागानां गयाश्राद्धनिमित्तं गयातीर्थं गच्छता मयका मार्गे वाराणस्यां विश्रामो विहितस्तत्रैव तत्रभवतां बन्धुवर्याणां दर्शनार्थमपि ब्रह्मनालस्थिते भवनेऽहमगमं किन्तु तदा भवन्तः कस्यचिन्महायागस्याचार्यतां कर्त्तुं बहिर् गतवन्त आसन्निति सूचनां प्राप्य आयुष्मतः परमवत्सलस्य श्रीगोपालचन्द्र-मिश्रमहाभागस्यैव सं.सं. विश्वविद्यालय-परिसरस्थित-संस्थानमुपेत्य तत्रैव च सपरिवारं तं सौभाग्यशालिनं सर्वविधसुखिनं विलोक्य नितान्तामोदसन्तानेना-ध्मातं मे मानसम् । तत्रैव गृहसौविध्यमिवानुभवता मयाऽऽकण्ठं भुक्तमपि । ईदृशस्य तनयरत्नस्य प्राप्तिर्नाल्पस्य तपसः फलमिति विदाङ्कुर्वन्तु भवन्तः सुहृद्वर्याः । श्रीमतां पौत्रोऽपि तमेवानुकुर्वाणो वर्त्तते—इत्यपि द्विगुणं समुज्जृम्भते भवतां सौभाग्यम् । गतसप्ताहे श्रीगोपालचन्द्रस्य आयुष्मतः पत्रमपि मया लब्धं, यत्र हि तेन परमात्मीयतया मम ज्येष्ठ-तनयस्यायुष्मतो नारायणस्य कृतेऽलिख्यत यत् सं० विश्वविद्यालये कस्यचन पौराणिकस्य साङ्ख्ययोग-प्राध्यापकस्य च स्थानपूर्त्यै विज्ञप्तिः प्रका-शितास्ति तत्र तेन प्रार्थनापत्रं प्रेषणीयम्" इति कियती तस्यात्मीयता । यो ननु दूरस्थितानप्यस्मान् न विस्मरति । अस्तु ।

पुनश्च—

अत्र जयपुरे "पीतल के किवाडों की डयोढ़ी" इति नाम्ना प्रसिद्धं राजभवनं समया स्थितस्य "लक्ष्मणद्वारा" इति स्थानस्य महन्तपद-

1. वैदिकविद्यायाः सुराचार्येषु = बृहस्पतिषु ।

वाच्यान् पं० श्रीनारायणप्रसादवैद्यमहोदयांस्तु भवन्तः परिचिन्वन्त्येव। इमे स्व० विजयचन्द्रचतुर्वेदानां श्रीहरिशास्त्रिणां च सहाध्यायिनः सन्ति। एषामेका पौत्री संस्कृते एम० ए० परीक्षोत्तीर्णा वर्त्तते। इमे च भवतां पौत्रमायुष्मन्तं जामातृत्वेन स्वीकर्त्तुमभिलषन्ति, मया सहास्मिन् विषये वार्त्तालापो जातः ....। यदि श्रीमन्तो विषयेऽस्मिन् किमपि चिकीर्षन्ति[2] तदा तु तस्य जन्मपत्रं स्वकीयं गोत्रादिकं च सम्प्रेष्यानुगृह्णन्तु, अन्यथा समुचितेनोत्तरेण कृतार्थयन्तु, येनाहं तान् प्रत्युत्तरेयम् इति।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीभगवत्प्रसादजी वेदाचार्य,
(सेवानिवृत्त-वेदविभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द संस्कृत-विश्वविद्यालय)
ब्रह्मनाल, बाराणसी

---

1. समयाशब्दयोगे द्वितीया। 2. कर्त्तुमिच्छन्ति।

४८

पारीककालेजः,
जयपुरम्
ता० ९-३-७४

संमाननीयाः श्रीमन्तो डा० व्यासमहाभागाः,
सादरं प्रणम्यन्ते भवन्तः ।

वाराणसीतः २६-२-७४ दिनाङ्कितं भावत्कं पत्रं सुललितसंस्कृत-लिखितं प्राप्तम् । इतः पूर्वमपि पत्रद्वयं लब्धमेव । श्रीमत्कं हृद्यातिहृद्यं गद्यामोदमाधुरीरसं पायं पायं नितान्तमनरीनृतीष्ट मम मनोनीलकण्ठः । पूर्वस्मिन् पत्रे तु पद्यान्यपि विलिख्य भवन्त आत्मनो भव्यभावान् प्रहिण्वन्तः ।

बडोदानगरस्थस्य एम० एस० विश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागाध्यक्षाः प्रथिताभिधेया डा० श्री ए० एन० जानी महोदया यात्राविलासं दिदृक्षन्ते-इति महद्भागधेयं मदीयम् । अहमवश्यं तेषां सविधे भवत्प्रेषितसङ्केतानुसारं पुस्तकं प्रेषयिष्यामि ।

राजस्थान-विश्वविद्यालय-विषयकं यत्कार्यं भवद्भिरलिख्यत तदहं निश्चितरूपेण चरीकरिष्यामि, विषयेऽत्र वीतचिन्तैर्भाव्यं भवद्भिः ।

अहमत्र डा० श्रीगोविन्दशङ्करशर्माणं भावत्कं सन्देशमपि प्रापयिष्यामि । मया पूर्वं पत्रं सङ्कटमोचन-हनुमन्मन्दिरं निकषा स्थितस्य भवद्भवनस्य सङ्केततो दत्तमासीत् । शेषं कुशलम् । वर्धतां नौ स्नेहः ।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीभोलाशङ्कर व्यास
एम. ए., डी.लिट्
प्रोफेसर हिन्दीविभाग
काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय
वाराणसी

४६

जयपुरम्
ता० २५-४-७४

विश्रुत-वेदाचार्य-श्रीभगवत्प्रसाद-मिश्रवर्येषु ।
बन्धुवरेष्वधिकाशि[1] प्रेम्णाऽलं नमांसि मे सन्तु ।।१।।

पौत्र्युद्वाह-निमन्त्रणं जयपुरे सम्प्रेषितं श्रीमता
लब्ध्वाऽहं सह भार्ययाऽमितमुदामम्भोनिधौ मज्जितः ।
किन्त्वत्रास्ति रुजोग्रया विकलिता जाया मदीया त्वियं
तस्मात्सम्मिलितुं क्षमां प्रियसखे ! याचे भवन्तं महे ।।२।।

प्रेषितं त्वाशिषां पद्यैः साकं रूप्यकपञ्चकम् ।
मालायै[2] दातुमुद्वाहे स्वीकृत्योपकरोतु माम् ।।३।।

इमानि सन्ति तानि पद्यानि—

लाजानञ्जलिना शमीदलयुतान् होमाश्रयाशे[3]ऽर्पितान्
या मन्त्रैरुत[4] जुह्वती निजवरस्यायुष्यमिच्छत्यलम् ।
कृत्वा साप्तपदीनकर्म गृहिणी माला भवन्ती च सा
पौत्री श्रीभगवत्प्रसादसुहृदः सौख्यं चिरं प्राप्नुयात् ।।४।।

हे वत्से माले !

पूज्यौ ते श्वशुरौ[5] यथैव पितरौ[6] मान्या ननान्दाऽनुजा
मन्तव्याः स्वसहोदरा इव सदा स्नेहाञ्चिता देवराः ।
येऽन्ये स्युः श्वशुरालये परिजनास्ते चापि वन्द्याः सदा
सर्वं चापि समर्प्यं किन्तु सततं भर्त्ता प्रसाद्यस्त्वया ।।५।।

हर्म्यं भव्यतरं परा मृदुतरा श्वश्रूर्हिते तत्परा,
सम्पन्नः श्वशुरः स्वभावमधुरः स्निग्धा ननान्दा तव ।
कान्तः कान्ततरः सुशिक्षितचरो सौम्यो मनोज्ञो महान्
भाग्याल्लब्धमिदं त्वया शतसमा जीव्याः स्वभर्त्रा सह ।।६।।

---

1. काश्याम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । 2. एतन्नामवत्यै कन्यायै ।
3. होमाग्नौ । 4. "उतापी द्वौ च बाढार्थौ" इत्यजयः 5-6. एकशेषद्वन्द्वसमासः ।

सर्वैश्वर्यप्रपूर्णं श्वशुरगृहमितः प्राप्य मा याहि गर्वं
नैवोच्चैर्ब्रूहि वत्से ! गुरुजनपुरतो माऽट्टहासं विदध्याः ।
वादः स्वल्पोऽपि हेयो ह्रियमवदधती कार्यलग्नाऽथ भूया
एवं त्वं भर्तृगेहे सततमभिमतं लप्स्यसे भव्यसौख्यम् ॥७॥

किमन्यत्—

(दोहा)

वत्से त्वं पत्या समं, सुचिरं मुदं चिनुयाः ।
विश्वनाथकृपा-दृशा च, कुलवृद्धिमातनुयाः ॥८॥

कन्यापिता वेदशास्त्राचार्यो गोपालकूकुदः[1] ।
सनैरुज्यं वर्षशतं जेज्यूया[2]दस्मदाशिषा ॥९॥

भगवत्प्रसादमिश्रं वेदाचार्य–सुपदादृतं सुहृदम् ।
आशीर्दलमभिलिख्य क्षमां याचते पुनर्नवलः ॥१०॥

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

वेदाचार्य वैदिकशिरोमणि
श्री भगवत्प्रसादमिश्रजी महोदय
वाराणसेय
ओसवाल भवन, 2B नन्दो मलिकलेन
कलकत्ता–6

---

1. "संस्कृत्यालङ्कृतां कन्यां यो ददाति स कूकुदः" इत्यमरः (3-1-14)
2. जीवधातोराशिषि यङ्लुकि रूपम् ।

५०

जयपुरम्
ता० २५–१–७५

विद्वन्मण्डलमण्डन – भूतेष्विन्दु-धवलयशःस्तोमेषु ।
श्रीमद्भाईशङ्कर-पुरोहितेष्वस्तु मे प्रणतिः ।। १ ।।

भवतां कार्यालयतः प्रहितासीत् सूचना पुरा त्वेका ।
प्राश्निकशुल्कद्रव्यं प्रेषयितुं द्रुतं मां[1] निकषा ।। २ ।।

विगतेऽप्यथ बहुसमये नैवायातं किन्तु किमप्यत्र ।
इति सूचयतोऽपि महज्–जिह्रेतीव मानसं मे तु ।। ३ ।।

यद्वा तद्वा भवताद् द्रव्याधीनो न नौ[2] शुभः स्नेहः ।
स्मरणीयो हि जनोऽयं समये समये यथाकार्यम् ।। ४ ।।

'कतिपयवैदिकमन्त्रा मयका रचिता नूत्नतमा अधुना ।
भवतां पार्श्वे संविदि प्रकाशयितुं प्रहीयन्तेऽद्य ।। ५ ।।

शेषं समविध[3]कुशलं प्रतिपलमञ्चामि जयपुरे न्यवसन् ।
भवतां कुरुताद् भगवान् शिवं सर्वं सकुटुम्बानाम् ।। ६ ।।

संवित्पत्रं कतिपय – मासेभ्यो नैव लभ्यते मयका ।
तस्मादत्रापि भवान् ध्यानं ददत्वलं त्वरितम् ।। ७ ।।

इत्थं निवेद्य नवलो ननु काङ्करोऽयं
श्रीमन्मनीषिमणये भवतेऽद्य सख्ये ।
विश्वासमेति यदरं[4] दलमन्तिकेऽत्र
संमोदयिष्यति विलिख्य भवान् मनो मे ।।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

आचार्य
श्रीभाईशङ्कर पुरोहित,
सम्पादक, 'संवित्' पत्रिका
भारतीयविद्याभवन, बंबई–२०

---

1. निकषाशब्दयोगे द्वितीया । 2. आवयोः । 3. सर्वविधम् । 4. शीघ्रम् ।

५१

जयपुरम्
ता० २६–१–७५

विद्वन्मणे श्रीलपिनाकपाणे !
गीर्वाणवाणी - करुणा - दृशा हि ।
श्रेयांसि भूयांसि सदा विचिन्वन्
जीव्याश्चिरं शुद्धयशो वितन्वन् ॥ १ ॥

श्रीमन्तो विज्ञवर्याः ! सहृदयसुजनैः संस्तुता मित्रकल्पाः !
प्राप्तं श्रीमद्भिरद्य प्रहितमिह मया पत्रमेकं दिनान्ते ।
किन्तु प्राप्यापि तन्मे किमपि न सहसा कर्म सम्पत्स्यतेऽत्र
नो विद्यन्ते यतोऽस्मिन्नविकलविदुषां धामनामानि हन्त ॥ २ ॥

चतुर्विंशतिविज्ञानामेव सम्प्रेषिताः खलु ।
सङ्केताः समया मां हि कोऽत्र हेतुर्महानहो ॥ ३ ॥
मन्ये, समाना लिपयश्चतस्रः प्रहिता भ्रमात् ।
अतः पुनर्भवत्पार्श्वे प्रहिणोमि लिपित्रयीम् ॥ ४ ॥

सम्प्रेषणीया अवशिष्टशास्त्रिणां
सङ्केतभागा अपि सत्वरं त्विह ।
इत्येव भूयोऽपि विधाय धृष्टता–
मावेदनं हन्त चरीकरीम्यहम्[1] ॥ ५॥

साम्प्रतं प्रेषणीयाऽत्र गृहसङ्केतसूचना ।
पत्रोत्तरप्रदाने हि सौविध्यं येन मे भवेत् ॥ ६ ॥

नवलकिशोरशर्मा काङ्करः

श्रीयुत पिनाकपाणिशर्मा शास्त्री एम. ए.
रिसर्चस्कालर
C/o पं० स्थाणुदत्तशर्मा शास्त्री राष्ट्रपतिपुरस्कृत
कुरुक्षेत्रविश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

1. कृधातोर्यङ्लुकि रूपम् ।

५२

श्रौतमुनिनिवासः, वृन्दावनम्
ता० १८-८-७५

बुधवर-विद्याभूषण-कवि-गणेशराम-बन्धुमूर्धन्ये ।
विलसतु भूयो भूयः सस्नेहं मे हार्दिकं नमनम् ॥ १ ॥

विद्वन्मानसराजहंस ! जगतां विद्यावतां भूषण !
पत्रं प्राप्तमनेहसो न महतः श्रीमत्सुवृत्ताञ्चितम् ।
पौत्र्युद्वाह-वशान्मयाऽपि न दलं हन्त ! प्रदत्तं पुरा
किन्त्वीशान-दयादृशाऽत्र कुशलं वर्त्ते, भवान् वर्त्तताम् ॥ २ ॥

पूर्वं यद् भवताऽभिनन्दनदलं संलिख्य मे प्रेषितं
लब्ध्वा तन्मयका स्वपूर्वजनुषः पुण्योदयोऽमन्यत ।
दृष्ट्वा तद् "भवितव्य" मुद्रितमपि प्राप्तश्च हर्षोऽपर—
स्तत् कैरक्षरगुम्फनैः प्रियसुहृत्-स्नेहोऽभिनन्द्यो भवेत् ॥ ३ ॥

कालेजाद् विनिवृत्य जयपुरपुरादागत्य वृन्दावने
ख्यातं श्रौतमुनेर्निवासमधुनाऽशून्यं वितन्वन्नहम् ।
वृत्तिं प्राप्य परां, समन्वयपरं भाष्यं त्वथर्वश्रुते -
र्गैर्वाण्यां गिरि लेलिखीमि सुविधां चाप्नोमि पत्न्या सह ॥ ४ ॥

(दोहा)

यदुनन्दन-विहरण-सदन–वृन्दावनमभिवीक्ष्य ।
सत्यं वच्मि रम्यमिदं, सर्वाण्येव परीक्ष्य ॥ ५ ॥

वैदिकतत्त्वान्वेषण-कर्मणि निरतेऽत्र शोधसंस्थाने ।
सन्तोऽन्येऽपि वसन्तो भाष्यं तन्वन्ति वेदानाम् ॥ ६ ॥

सम्प्रति "लखनउ" नगरात् पुरस्कारधनं प्रमाणपत्रञ्च ।
राज्यपालप्रदत्तं लब्ध्वाऽऽगतोऽस्म्यत्र सस्त्रीकः ॥ ७ ॥

वर्षेऽस्मिन्नुदयपुरे किञ्च साहित्यैकादमीसमितौ ।
यदि सम्मिलितो हि भवांस्तर्हि लेलिख्यतां तदुदन्तम् ॥ ८ ॥

इत्यात्मवृत्तमुल्लिख्य कोऽप्ययं भवतः सुहृत् ।
सानन्दं गमयन् कालमुत्तरं सम्प्रतीक्षते ॥ ९ ॥

नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीगणेशरामशर्मा विद्याभूषण
सिंघाड़ा गली, घूमटा बाजार, डूंगरपुर

श्रौतमुनिनिवासः, वृन्दावनम्
ता० ४-९-७५

श्रीमत्सु अविद्याधरेष्वपि विद्याधरेषु पं० श्रीवैजापुरकरेषु सुहृद्वरेषु सम्मुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

अभिन्नान्तस्तला विद्वत्तल्लजाः,

इदानीं बहुल-समयानन्तरं भवतां प्रवृत्तिरनायासमेवासादिता। पूर्वं यात्राप्रसङ्गतः सह सहधर्मिण्या वाराणसीमुपेतस्य मम पूज्यचरणश्रीराजेश्वरशास्त्रिणामावासे भवतां साप्तपदीनं सौहार्दमभूत्। न तदनन्तरं नौ मेलनमभवदिति। किन्तु मध्येवृन्दावनमत्र मयासाकं श्रौतमुनि-निवासमधिवसता वाराणसेयेन साहित्याचार्य-श्रीमहेशचन्द्रशुक्लमहोदयेन सम्प्रति सर्वं भवद्वृत्तं कथितम्। उदासीनसंस्कृतमहाविद्यालयं परित्यज्य भवन्तः स्याद्वाद-संस्कृतमहाविद्यालये साहित्यविभागाध्यक्षपदमलङ्कुर्वन्तः सन्ति साम्प्रतमित्यपि शुभवृत्तमेतेनोक्तम्। वेद-दर्शनाचार्य-महामण्डलेश्वर-स्वामिश्रीगङ्गेश्वरानन्दोदासीन-महाराजैः सम्पाद्य प्रकाशितस्य 'भगवान् वेदः' इति महाग्रन्थस्य सम्पादनादिकर्मणि भवद्भिरपि तेषां साहाय्यभूतैरभूयतेति श्लाघनीया वार्त्ता। एषु दिवसेष्वपि तत्र काशीमधिवसन्तः श्रीमन्तः श्रीस्वामिचरणैरुपदिष्टेन पथा किमपि लेखनकार्यं कुर्वन्तीत्यपि श्रवणसुखकरः समाचारः।

सुहृद्वर्याः,

अहं तु साम्प्रतं कालेजतः सेवानिवृत्तो भूत्वाऽत्र श्रीसद्गुरूणामाज्ञया अथर्ववेदस्याभिनवसायणभाष्यं कतिपयसूक्तानां तन्तनीमि। पाण्डीचेरीतः समायातः सुविदितनामधेयः श्रीजगन्नाथवेदालङ्कारः कुन्तापसूक्तस्य भाष्यं लिखन्निह संवसति। श्रीशुक्लमहोदयेनेदमप्युक्तं यद्भवन्तः प्रतिवर्षं नैदाघेऽनेहसि सद्गुरुभिः सह आबूपर्वतेऽपि गच्छन्ति। श्रीस्वामिनो महाभागा आगामिनि ग्रीष्मसमये मामपि तत्रागन्तुमनुरुन्धन्ति। अतो भवद्भिरपि सपत्नीकैस्तत्रावश्यमागन्तव्यम्। अहमपि जायाद्वितीयस्तत्रोपस्थास्ये। तत्रैवावयोः शास्त्रचर्यया सुखेन दिवसाः सप्रमोदं समाप्तिं स्प्रक्ष्यन्तीति—

नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीगोविन्दनरहरि वैजापुरकर एम.ए.
न्याय-वेदान्त-साहित्याचार्य
साहित्यविभागाध्यक्ष, स्याद्वादमहाविद्यालय
श्रीगङ्गाधरशास्त्रिभवन
अमृतसिन्धु औषधालय घासीटोला, वाराणसी

५४

चतुर्वेदशोधसंस्थानम्
श्रौतमुनिनिवासः, वृन्दावनम्
ता० ५–९–७५

श्रीमत्सु निरवद्यविद्याविद्योतितेषु डा० श्रीविद्यानिवासमिश्रमहोदयेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

अयि शारदासहोदरा विद्वत्पुरन्दराः,

साम्प्रतमिह मया सह परमपावने वृन्दावने श्रौतमुनिनिवासमधिवसतो वाराणसेयादस्मत्सुहृत्तः श्रीमहेशदत्तशुक्लसाहित्याचार्याद् भवतां साहित्यरसिकतां, पाण्डित्यप्रचुरतां, प्रभूतप्रभावशालितां गुणिगण-गुणनिकषोपलतां, समुचितविचारचारुताञ्च श्रावं श्रावं दुर्दैवादलब्धसाक्षात्कारेष्वपि सहृदयतल्लजेषु भवत्सु किमपि स्निह्यतीव मे मनः। अतएव भवत्करसरसिजयोरेकां नवीनां गद्यरचनामुपाहरन्नहमिदानीममन्दां मुदमनुभवामि। भवति चात्रायं श्लोकः—

प्राज्ञप्रेष्ठा गरिष्ठाः सहृदयसमितौ प्राप्तपूर्णप्रतिष्ठाः !
प्राच्येऽर्वाच्येऽपि शास्त्रेऽप्रतिहतगतयो वन्द्यविद्वद्वरिष्ठाः !
श्रीमद्विद्यानिवासाः ! करसरसिजयोः श्रीमतां धीधनानां
नूत्नं सद्गद्यकाव्यं मधुकरकुलवद्राजतां नित्यमेतत् ॥

धन्यातिधन्या विद्वन्मूर्धन्याः,

यदि श्रीमन्तोऽनुमन्येरंस्तर्हि काव्यमिदं सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य यस्यां कस्याञ्चित् परीक्षायां निर्धारयितुं प्रयतेरन्। राजस्थानविश्वविद्यालयस्तु पुस्तकमिदं शास्त्रिपरीक्षायाम् 'एम. ए.' परीक्षायाञ्च निर्धार्य वर्त्तमानकालिकसाहित्यप्रोत्साहने महान्तमात्मनो मनोयोगं प्रादर्शयत्।

यद्यपि मदीयं स्थायिस्थानं मध्येराजस्थानं जयपुरमेव विद्यते। किन्त्विदानीं वृन्दावनेऽत्र श्रौतमुनिनिवासमधिवसन्नथर्ववेदभाष्यलेखनकर्मणि व्यापृतोऽस्मीति वृन्दावनसङ्केतेनैव पत्रव्यवहारः करणीयः।

डा० श्रीविद्यानिवास मिश्र
भाषाविज्ञानविभागाध्यक्ष,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रौतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
ता० ६–९–७५

श्रीमत्सु विशिष्टवैदुष्य-संश्लिष्टेषु-विशदयशः-सौरभ-समाकृष्ट-साहित्यिकेषु विद्वच्चूडामणिषु श्रीवटुकनाथशास्त्रि 'खिस्ते' महाभागेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

अयि वल्गुवल्गद्यशोभारा महोदाराः,

अपि स्मरन्ति मां श्रीमन्तः ? पुण्यक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे पण्डितपरिषदि (ओरयंटल कान्फ्रेसाभिधायां) एकस्मिन् छात्रावासे कृतावासयोरावयोः साप्तपदीनं सौहार्दं जातम्। श्रीमतां परमपूज्यपितृचरणा महामहोपाध्यायाः पं० श्रीनारायणशास्त्रिखिस्तेमहाभागा अपि मयि नितान्तं स्निह्यन्ति स्म। एकवारं तैः सह मम पत्रव्यवहारोऽपि जातः ३.८.५४ दिनाङ्के। सौजन्ये, वैदुष्ये, व्यवहारे च स्वपितृपादाननुकुर्वन्तः श्रीमन्तोऽपि मयि तथैव कृपा-विप्रुषः प्रवर्षन्तीत्यप्यहं जाने। अत एवात्मीयतामाप्तेभ्यो भवद्भ्यो 'यात्राविलासं' नाम स्वरचितं गद्यकाव्यमुपायनीकृत्य तत्र स्वकीयोऽन्त-रात्मा धन्यतामापादितः।

तदिदं काव्यमुत्तरप्रदेश-राजस्थानशासनाभ्यां पुरस्कृतम्। राजस्थान-विश्वविद्यालयेन च 'एम.ए.' परीक्षायाः 'शास्त्रि' परीक्षायाश्च पाठ्यक्रमे तदिदं निर्धारितमिति ज्ञायं ज्ञायं नितान्तं मोमुदिष्यन्ते भवन्तः। काव्यमिदं भवतां विश्वविद्यालयस्य शास्त्रि-परीक्षायां संनिविष्टं भवेदित्यत्र किं करणीयम् ? किमाचरणीयम् ? को विधिरवलम्बनीयः ? कोऽस्ति सरलोपायः, कः सहायः ? कः पन्थाः ? का युक्तिः ? केन नैपुण्येन, कतमेन विधानेन, कतरेण प्रकारेण चाविलम्बं तदिदं कार्यं सम्पद्येत— इति बाढं जिज्ञासते मे मनः।

साम्प्रतमहं जयपुरस्थ–पारीककालेजस्य संस्कृतविभागाध्यक्षपदा-न्नियमानुसारं विश्रामं लब्ध्वा वृन्दावनेऽत्र श्रौतमुनिनिवासमध्यतिष्ठन् वैदिकं शोधकार्यं कुर्वन् दिवसान् गमयामीति सर्वोऽपि पत्रव्यवहारो वृन्दावन-सङ्केतेनैव करणीयो न च जयपुरीयभवनसङ्केतेन। शेषं कुशलम्।

श्रीमद्वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्करः

श्री बटुकनाथशास्त्री खिस्ते
साहित्यविभागाध्यक्ष,
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय
वाराणसी।

५६

श्रौतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
ता० २५–१०–७५

विश्रुतनामसु[1] कृतिषु श्रीबलदेवोपाध्याय-वर्येषु ।
विलसत्वसकृन्नमनं नवलकिशोरकाङ्करस्यास्य ।।१।।

श्रीमन्तो माननीया ! अमरगुरुवर-स्पर्द्धि-पाण्डित्यसारा !
नाना–ग्रन्थार्यं –सृष्टि-प्रकटित–परम–प्रांशुमेघाप्रसाराः !
विष्वग्वस्तूरुमूल्य-प्रतिहत–जनतोत्साहसञ्चारभारो
भूयाद् भव्याय भूयांस्त्विह भुवि भवतां दीपमालामहोऽयम् ।।२।।

अपि स्मरति श्रीमान् हिन्दूविश्वविद्यालयं निकषा ।
श्रीमद्भ्योऽर्पितमेकं पुस्तकं स्वसम्मतिं दातुम् ।।३।।

सन्मान्या धिषणावधीरित-सुराचार्यादिविद्योदयाः[2] !
आत्मीयस्य ममापि किं तदधुना व्यस्मार्षु रंहो वचः ।
तद्भूयोऽपि निवेद्यतेऽद्य मयका सम्प्रेषणीया शुभा
स्वीया सम्मतिरात्महस्तलिखिता यात्राविलासाश्रिता ।।४।।

कार्याधिक्याद्भवन्तो गदितुमपि न हि प्राप्नुवन्त्येव दिष्टम्
एतद् बाढं हि जाने, न च कमपि जनं वा सम्मतिं प्रेषयन्ति ।
सत्यप्येवं मदर्थं कथमपि समयं प्राप्य सौहार्दपूर्णैः
श्रीमद्भिर्लेखनीया कतिचन कृपया पङ्क्तयस्तूर्णमेव ।।५।।

अधिकं किमिह लिखेयं स्वजनवत्सलेषु विज्ञवर्येषु ।
पत्रं प्रतीक्षमाणो विरमाम्यतः काङ्करोऽहं तु ।।६।।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

आचार्य श्रीबलदेव उपाध्याय
निदेशक– अनुसन्धानविभाग,
वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी

---

1. विख्यातनामसु । 2. धिषणया=बुद्ध्या अवधीरितः=न्यक्कृतः, सुराचार्यादीनां=देवगुरुप्रभृतीनां विद्योदयो यैस्ते ।

५७

श्रीतमुनिवास:;
वृन्दावनम् ।
ता० ८-११-७५

काश्यां विष्णुपदी[1]-पवित्रपुलिने, वृन्दावनेऽपि क्वचिद्,
येषां काव्यगिरां सुधासमवचांस्याकर्ण्य विद्वज्जना: ।
चित्राङ्के लिखिता इवान्वहमहो मुज्जृम्भणं[2] चेच्यति[3],
'शुक्लान्' व्याकृतिधीवरान्[4] सखिमणींस्तान्नन्नमी[5]म्यानत: ।।१।।

श्रीमद्भि: पूर्वमुक्तं, स्मरशरदिवसे[6] गन्तुकामोऽस्मि नूनं
वृन्दारण्यात्[7] प्रभाते पशुपतिनगरीं काशिकां कामपूर्णाम् ।
श्रीमन्त: किन्तु हन्त ! प्रथितगुणगणा: प्रस्थिता: पूर्वमेव
शोचं शोचं तदेतद् विकलितमनसा स्थीयतेऽलं मयाऽत्र ।।२।।

यतोऽहं केवलं श्रीमद्-दर्शनानन्दलब्धये ।
तृतीयायां तिथावेव सस्त्रीकोऽत्र समागत: ।।३।।

अस्तु, यात्राविलासं तद् यथा स्यात् पाठ्यपुस्तकम् ।
तथा यत्नो विधातव्यो भवद्भि: सुहृदां वरै: ।।४।।

अतोऽत्रभवतोऽन्यज्ज्ञान्[8] लेलिख्ये[9] किमहं स्वयम् ।
परिचिन्वन्ति हृद्भावमिङ्गितेनैव पण्डिता: ।।५।।

विद्वद्वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्कर:

श्रीयुत कालीप्रसादजी शुक्ल
व्याकरणविभागाध्यक्ष
संपूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी ।

---

1. गङ्गाया: पवित्रकूले । 2. मुदां जृम्भणम् । 3. चिनोतेर्यङ्लुकि लटि रूपम् ।
4. व्याकृतौ (व्याकरणे) धी: बुद्धिर्येषां ते, तेषां वरान् श्रेष्ठान् ।
5. नमधातोर्यङ्लुकि । 6. पञ्चम्यां तिथौ । 7. वृन्दावनात् । 8. विज्ञान् ।
9. लिख्धातोर्यङि ।

५८

सुमेरुकर्णमार्गः, रामगञ्जः
जयपुरम्
ता० ८-१२-७५

श्रुति[1]श्रीमन्तः परमायुष्मन्तः श्रीमिश्रवर्या डा० श्री गोपालचन्द्र-वेदाचार्याः ! सन्त्वखर्व-पर-परार्धाशिषां राशयः ।

पत्रमधिगत्य नितराममोमुदीन्मामकीनं मनः। श्रीमद्भिर्यथासमय-मुत्तरदलं प्रहितमित्यभिजनानुरूपमेवाचरितम्, नात्र स्वल्पोऽपि कथनस्या-वसरः। भवन्त एवेहत्यं निमन्त्रणं लभेरन्नित्येव मया यतितं यतिष्यते च। अग्रे परमेश्वरः प्रमाणम् ।

गतदिवसेऽत्र परमपरामर्शानन्तरं सदस्यैः स्थिरीकृतं "यदस्मिन् वत्सरे महर्घताधिक्यात् स्थाने स्थाने विद्यार्थिनामुपद्रवकारणाच्चोपाधि-वितरणोत्सवो न सम्पादनीयः। विभिन्नेषु महाविद्यालयेष्वेवोपाधिपत्राणि प्रेषणीयानीति" सेयं सूचना शीघ्रमेव सर्वत्र प्रेषयिष्यते। कर्णाकर्णिकयेद-मपि श्रुतं यत्स्वतन्त्राः परीक्षार्थिनः स्वगेहस्थिता एवोपाधिपत्राणि लप्स्यन्ते मार्चमासे। किमपि भवतु नाम, नास्मत्कर्मणि काचन क्षतिः समुदेष्यतीति विश्वसिमि।

वत्सलस्य चिरायुषो विवाहसम्बन्धे भवन्तो गृहसदस्याश्चान्ये यद्विवरणं जिज्ञासन्ते[2] कुमारिकाचित्रञ्च दिदृक्षन्ते तदर्थमहं तान-सोसूचम्। दिनेष्वेषु सा बालिकैकस्मिन्नुद्वाहमहे मातुलगृहङ्गता वर्तते। आगतायां हि तस्यामचिरादेव छायाचित्रं प्रेषयिष्यते भवत्सविधे। सा एम० ए० परीक्षोत्तीर्णास्तीति त्वहं जाने। सुलक्षणा सुशीला सुशोभनाऽपि वर्त्तत एव। विवाहे किं किं करिष्यते—इति तु स्पष्टं वक्तुं न शक्यते। मयेदृग्विधे कृतेऽपि प्रश्ने सम्भवतस्तदभिभावकाः सङ्कोचमञ्चन्तो न

....

1. वेदशास्त्रलक्ष्मीवन्तः । 2. ज्ञातुमिच्छन्ति ।

समुचितमुत्तरं दास्यन्ति। तथाप्यहं तेषां भावं विज्ञाय भवतः सूचयिष्यामि ।

एकोऽन्यो महानुभावोऽपि विषयेऽस्मिन् वार्त्तां कर्तुं मद्भवने समागतवान्। अमुष्य कन्या एम० एस० सी० कक्षायामधीयानास्ति। शीघ्रमेवास्या अपि छायाचित्रं प्रेषयिष्यते भवतो निकषा।

शेषं कुशलम्। सर्वान् बालान् मे शुभाशीर्वादैः संवर्धयन्तु भवन्तः। भवन्मातरं मे पत्नी समभिनन्दतीति सा सूचनीया।

भावत्को

नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीगोपालचन्द्र मिश्र वेदाचार्य एम.ए.
वेदविभागाध्यक्ष,
अध्यापकनिवास, संपूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय
जगतगंज, वाराणसी–२

५९

रामगञ्ज!, जयपुरम्
ता० ८–१२–७५

आचामीकृत-सर्वशास्त्र-गहनाकूपारपूरप्लवाः !
मान्या विश्रुतकीर्त्तयः क्षितितले दाण्डेकराः शास्त्रिणः !
प्रेम्णा प्रेषयितुं विलिख्य निकषा मामात्मनः सम्मतिं
हस्तेन्दीवरयोरयं हि भवतां वेदो मिलिन्दायताम् ।।१।।

पुस्तकालयमुद्दिश्य श्रीमन्तस्तत्र सक्षमाः।
अभ्यर्थ्यन्ते सानुरोधं क्रेतुञ्च पुस्तकद्वयीम् ।।२।।

कस्मिंश्चिदपि तत्रत्ये वृत्तपत्रे प्रकाशिताम्।
भावत्कीं सम्मतिं चापि दिदृक्षे विज्ञतल्लजाः ! ।।३।।

एवञ्चाप्यनुरोरुध्ये श्रीमतो विबुधादृतान्।
हृत्पद्मे भवतां शश्वत् स्मृतिर्मे षट्पदायताम् ।।४।।

नवलकिशोरकाङ्करः

डा० आर० एन० दांडेकर शास्त्री
भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट,
पूना-4

६०

श्रौतमुनिनिवासः,
वृन्दावनम् ।
ता० १०-१२-७५

श्रीमत्सु वन्दनीयेषु योगेश्वरनिर्विशेषेषु तपोमूर्तिषु श्रीमद्योगिवर्य-नरहरिनाथशास्त्रिचरणेषु मदीयाः सन्तु कोटिशो नतयः ।

महामान्याः,

परमपूज्य-महामण्डलेश्वर-वेददर्शनाचार्य - श्रुतिमूर्ति-श्रीसद्गुरुदेवान् गङ्गेश्वरानन्दमहाराजान् समया मन्नाम्ना प्रहितं भावत्कं कृपापत्रमलाभि मयका । कथमहं श्रीमतां विस्मरणापराधं विधाय पूज्यपूजाव्यतिक्रमेणा-त्मानं कलङ्कयितुं शक्नोमि । पूर्वं जयपुरेऽनेकधा श्रीमद्भिः सह पत्र-व्यवहारं कृत्वाऽऽत्मानं पावनतामलम्भयम् । मदीयो ज्येष्ठतनयोऽपि भवतां स्नेहभाजनतां गत आत्मानं धन्यं मम्मनीति । अस्तु ।

श्रीमन्तः सद्गुरवो गङ्गेश्वरानन्दमहाराजा अपि पूर्णं परिचिन्वन्ति श्रीमतो योगिवर्यान् । कीदृशोऽत्र सन्देहोदयः ? का च परिचयविधायिन्या लेखन्या ? न वा पुनरपरोक्षं सर्वविदां तपस्विनाम् । सस्नेहमिमेऽपि जिज्ञासन्ते भवतां कुशलोदन्तं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च ।

श्रीयोगिवर्याः,

भवतां वेदाभिरुचिं ज्ञायं ज्ञायं नितान्तं मोमुदीमि । अथ श्रीगुरुपादा मासस्यास्य चतुर्विंशदिनात् पञ्चदिवसान् दिल्लीनगरिकां कृतार्थयिष्यन्ति स्वकीयेनावस्थानेनेति तत्र श्रीमद्भिरागन्तव्यं तद्दर्शनार्थम् । नो चेदिदानीं सौविध्यं तर्हि फर्वरीमासस्य पञ्चमदिनात् मार्चमासस्य दशमदिवसपर्यन्तं मध्येवृन्दावनमिहैव श्रौतमुनिनिवासे श्रीगुरुचरणा तिष्ठासन्ति[1] । अत्रा-प्यागन्तुं शक्यते श्रीमद्भिः । इमेऽपि सद्गुरवश्चिकीर्षन्ति स्वल्पं परामर्शं बहुषु विषयेषु भवद्भिः सह ।

"भगवान् वेदः" इति ग्रन्थराजस्तु भवद्भिरिदानीं देहलीतो लब्धुं शक्यते । शेषं कुशलम् ।

श्रीमद्वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्करः

योगिराज श्री **नरहरिनाथजी शास्त्री**
नेपालराजगुरु, मृगस्थली (नेपाल)

---

१. स्थातुमभिलषन्ति ।

श्रीतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
१०–१२–७५

श्रीमत्सु विशिष्ट - वैदुष्य - संश्लिष्ट - सौजन्य - जन्य-यशोभास्वरेषु राजस्थान - संस्कृत - संवित्-सचिवेषु तत्रभवत्सु श्रीयुत–खड्गनाथमिश्र-महाभागेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

विपश्चिदपश्चिमाः,

संविदः परामर्शदातृपदं स्वीकर्तुं स्नेहसिक्तं भवद्दलमिह लब्धम्। राजस्थानेऽत्र भगवत्याः सुरसरस्वत्याः प्रचुरप्रचाराय राज्यशासनानुमोदितायाः संस्कृतसंविदः स्थापना जाता मध्येजयपुरमिति ज्ञायं ज्ञायं नितान्त-ममोमुदीन्मामकीनं मनः। भवतां तत्र साचिव्यं सुवर्णे सुगन्ध-समायोगं मन्यमानोऽहमस्याः पूर्णं साफल्यं मम्मनीमि विश्वसिमि च निश्चप्रचमियं राजस्थानस्य मुख्यमन्त्रिणां शिक्षामन्त्रिणां संस्कृतनिदेशालयस्यान्येषाञ्च विदुषां सहयोगेन सत्यमेव संस्कृतसेवां चरीकरिष्यति। को वा जनो देववाचः सेवाध्वरे सहर्षमार्त्विज्यं स्वीकर्त्तुं नाग्रे प्रसरीसरिष्यतीति राजस्थान-संस्कृतविभागस्य शोभनानुरोधमहं सोल्लासं शिरसा वहामि।

मान्याः,

किन्तु संस्कृतस्य प्रचारं प्रसारं विधातुं स्थापिताया अस्याः संस्कृत-संविदः सचिवानां पत्रं हिन्दीभाषायां विलोक्यानल्पं तोद[1]मस्पृशन्मे चेतः। हन्त हन्त, किमाङ्ग्लायाः संविदः सचिवाः कुत्रचित् स्वभाषां परित्यज्य हिन्द्यां व्यवहरन्तो भवद्भिर्दृष्टाः श्रुता वा। अतः साम्रेडं साग्रहं सविनयञ्च श्रीमतोऽनुरोरुधीमि[2] यन्निखिलोऽपि संवित्सम्बन्धी पत्रव्यवहारः संस्कृतभाषयैव सम्पादनीयः सर्वत्र हि।

संविदः पत्रिका देववाचि हिन्द्यां वा प्रकाशमेष्यति, प्रत्यङ्कं कियतां लेखानां मुद्रणविधानं विद्यते, कियत्पृष्ठात्मकश्च लेखस्तत्रापेक्ष्यते मदीयः, इत्यप्यवगन्तुं चेतः समुत्कण्ठते।

श्रीयुत खड्गनाथ मिश्र
(प्राचार्य, महाराज संस्कृत कालेज)
राज० संस्कृतसंवित्सचिव
महाराजसंस्कृतकालेज, जयपुर

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

1. कष्टम्। 2. अत्यन्तमनुरोधं करोमि।

६२

विद्यावैभव-भवनम्
सुमेरुकर्णमार्गः, रामगञ्जः
जयपुरम्
५–१–७६

श्रीमत्स्वविरतं शास्त्रचिन्तन-समर्जित-सिद्धि-सारेषु समधिक-सम्भृत-सुकृत - दूरीकृत - दुरितेषु, वेदवेदाङ्गादि-चिन्तन-दान्तहृदयेषु तत्रभवत्सु श्रीराजेश्वरशास्त्रि-द्राविडचरणारविन्देषु विलसन्तु मे सश्रद्धं समर्पिताः शतशः प्रणामाः ।

वन्दनीयाः,

बहोः कालात् पूर्वमेकबारं मया जयपुरेऽत्र पूज्यवर म० म० श्रीगिरिधरशर्म-चतुर्वेदानामावासे विहिताधिवासानां भवतां दर्शनमक्रियत । तस्मिन्नेव दिवसे च सायं संस्कृतवाग्विवर्धिन्या परिषदा समायोजिते महोत्सवे श्रीमद्भ्योऽभिनन्दनपत्रमर्पयित्वाप्यहं धन्यतामलम्भयमात्मानम् । निश्चप्रचमुष्मादेवानेहसः[1] श्रीमत्सु मदीयं मनः पितृचरणेष्विव श्रद्धाप्रवणं वर्वर्ति । अत एव मया तत् पुस्तकं श्रीमतां सविधे पठनार्थं प्रेषितमासीत् । हन्त, श्रीमन्तो हि तदधीत्य स्वत एव सारगर्भितामात्मसम्मतिं जयपुरराजगुरु-श्रीगोपीनाथद्राविडपुत्रवध्वा भवतां तु आत्मजया सम्प्रति प्रेषितवन्त इति महद् भागधेयं मदीयं यस्मिन्नीदृक् स्निह्यन्ति भवन्तो विद्यावयोवृद्धाः । तत्कथनानुसारं हीयं सम्मतिसमवाप्तिसूचना श्रीमत्सविधे प्रहिता वर्तते । श्रीमत्कराक्षराङ्कितं तत्पत्रं मया लब्धमिति बाढं जानन्तु श्रीमन्तः । भवदात्मजेयं सौभाग्यवती कथं नेह भावत्कं पत्रं मां समया प्रेषयितुं शक्नोतीति ।

पूज्यचरणाः,

दिवसेष्वेष्वहं वैदिकभाषायां वैदिकैश्छन्दोभिर्निबद्धमेकं राष्ट्रवेदं नाम नवीनं वेदनिर्माणं चिकीर्षामि । कतिचन सूक्तानि तु रचितान्यपि । सहैव सायणभाष्यसदृशं विशदं काङ्करभाष्यमपि लिलेखिषु[2]रस्मि । एतत्तु श्रीमतां

1. समयात् । 2. लेखितुमिच्छुः सन्नन्ताद् उः ।

न परोक्षं यदहं पूज्यपाद- म० म० श्रीमधुसूदनमैथिलेभ्यो वैदिक-वाङ्मय-मधीतवानास्मिति। तदाशीर्वादेनामोघेनैव वैदिकभाषायां वैदिकेषु छन्दःसु च ममासाधारणोऽधिकारः। राष्ट्रवेदस्यास्यैकं सूक्तं भवतां पार्श्वेऽप्यवलोक-नार्थं प्रेषितमिदम्। श्रेयःसूक्तमस्य बम्बईतः प्रकाशितायां भारतीय-विद्याभवनपत्रिकायां 'संविदि' मुद्रितमप्यभूत्।

श्रीमन्तः परमप्राचीना मीमांसादर्शनानुसारिणोऽत एव च वेदाना-मपौरुषेयत्वपक्षपातिनो महामनस्विनो वर्तन्ते। तस्माद् भवन्मनोभावानपि ज्ञातुं चेतः समुत्कण्ठते। आशासे, अवश्यमेव सति सौविध्ये स्वविचार-प्रेषणेन मामुपकरिष्यन्तीति निवेदयति—

नवलकिशोरकाङ्करः

पूज्यपाद महर्षिकल्प
श्री राजेश्वरशास्त्री द्राविड
श्रीवल्लभरामशालिग्रामसाङ्गवेदविद्यालय
रामघाट, वाराणसी-2

६३

श्रौतमुनिनिवासः,
वृन्दावनम् ।
ता० २०-३-७६

श्रीमत्सु विद्यावयोवृद्धेषु नदीकान्तशान्तस्वभावेषु तत्रभवत्सु श्रीविद्याधरशास्त्रिमहाभागेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः ।

मान्याः,

महतोऽनेहसो न श्रीमतां कुशलदलं लब्धवानहम् । अपि कुशलिनो भवन्तः ? साम्प्रतमहन्तु कालेजतो लब्धविश्रामो मध्येवृन्दावनं विगतहायनादेवात्र श्रौतमुनिनिवासमधिवसामि । आश्रमोऽयं स्वामिगङ्गेश्वरानन्दमहाराजानां विद्यते । भवन्तोऽप्येतान् स्वामिनो जानन्त्येव । एभिरेवात्र वैदिकशोधसंस्थानं सञ्चाल्यते । इदानीं संस्थानस्यास्य तत्त्वावधाने त्रयो विद्वांसोऽथर्ववेदस्य समन्वयभाष्यलेखने व्यापृताः सन्ति । अहमपि तेषामन्यतमः । स्वामिमहाभागा अत्र विद्वद्भ्यः सर्वविधं सौविध्यं वितरन्त्यतो न किमपि कष्टमनुभूयते ।

"यात्राविलासं" नाम गद्यकाव्यं मया यथासमयं श्रीमतां सविधे प्रहितमेव । तद्धि राजस्थानशासनेन तथोत्तरप्रदेशशासनेनापि च पुरस्कृतम् । साम्प्रतं त्विदं शास्त्रिपरीक्षायां कादम्बरीपत्रेण साकं विश्वविद्यालयेन निर्धारितमिति ज्ञात्वा मोमोदिष्यन्ति श्रीमन्तः ।

इदानीमिह व्रजमधिवसन्नहं 'नवलसतसई' नामतो व्रजभाषायां हिन्दीकाव्यं लिखितवान् । तदपि प्रहितमेव श्रीमतां सेवायाम् । विश्वसिमि, सुविधानुसारं वाचयित्वैतत् स्वविचारप्रेषणेन कृतार्थयिष्यन्ति भवन्त आत्मीयमिमं जनम् ।

आयुष्मान् नारायणस्तु जयपुर एवायुर्वेदकालेजे कार्यं कुर्वन्नस्ति । तस्यापि प्रणामाः स्वीकार्याः । शेषं कुशलम् ।

भवदीयो
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीयुत विद्याधरजी शास्त्री
एम.ए.
सरस्वती सदन, अलखसागर,
बीकानेर ।

वृन्दावनम्
ता० १५–४–७६

श्री स्वामिवर्य्येषु गोविन्दानन्दमहाराजेषु समुल्लसन्तु नतयः ।

वन्दनीयाः,

सर्वप्रथमं परमदान्त-शान्त-पावनान्तःकरणानां विद्वद्गुणगण-परीक्षण-निकषोपलानां श्री १०८ सद्गुरुदेवमहाराजानां चरणारविन्देषु साङ्घ्रि-युगलस्पर्शं मम प्रणाम-पुष्पाञ्जलिर्निवेदनीयः ।

अथ चात्र मध्येश्रौतमुनिनिवासं विधातुरादेशमिव गुरुमहाराजानामनुशासनं शिरसि निधाय तेषामाशिषैव लब्धात्मबलो मासेऽस्मिन्नेव विंशकाण्डस्य भाष्यलेखनं समाप्तिबिन्दुं प्रापयिष्यामीति जाने ।

अथ पुनर्जयपुरमेत्य स्वल्पं च तत्र विश्रम्य मई-मासस्य प्रथम एव सप्ताहे विघ्नैरनुपद्रुतस्तत्रभवतां भवतां समीपे अर्बुदाचले (आबूपर्वते) समायास्यामि । किन्तु भवन्त इदं तु जानन्त्येव यदहं ब्राह्मणवंशपरम्परोचितां प्राक्तनीं मर्यादामद्याप्यनुसरन् श्रीमतां भोजनालये नैव सम्मिलितो भवामि । अस्याञ्च स्थितौ सपत्नीकस्यैव मम तत्रागमनं भविष्यति । परं, तत्र मम कृते स्वतन्त्रप्रकोष्ठस्य व्यवस्था आवश्यकी । यत्र हि स्वतन्त्र एव स्नानागारसम्बद्धः शौचालयोऽपि भवेद्, यथात्र वृन्दावने विद्यते ।

अहं विश्वसिमि, यद् भवन्तः स्वकीयं सर्वविधं सौविध्यं तत्रत्यं सुविचार्य एभिः श्रीगुप्तमहोदयैरेवात्र मामाबूनिवासव्यवस्थासम्बन्धे सूचयिष्यन्तीति ।

अथ चेदमपि श्रूयते, यद् आबूपर्वतेऽपि मशकमहाराजानां प्राज्यं साम्राज्यं वरीवर्त्ति । यदीदं सत्यं, तर्हि तत्र द्वे मशकवारिण्यावपि समपेक्षिते भविष्यतः । यतोऽत्र वृन्दावन एव मशकासुराणामाक्रमणेन साम्प्रतं क्षणमात्रमप्यवस्थानं कल्पायते । अत्र मदीयपत्न्यास्तु विचित्रैव दुर्दशा जाता, यतः सा महतोऽनेहसः रक्तविकाररुजा तुन्ना विद्यते । त्वचि कुत्रापि जाते मशकव्रणे रक्तविकृतिः सुरसेव स्फारिताननां तामात्मसात् कर्त्तुमुद्युङ्क्ते ।

अतः श्रीमन्तस्तत्रत्यं स्वकीयं सर्वविधं वस्तुजात-सौविध्यं सुचिन्त्य गुप्तमहोदयैः, श्रीमद्भिः सुरजनदासस्वामिमहाभागैरेव वा मां वस्तुस्थित्या सूचयन्तु, येनाहं नैदाघं कार्यक्रमं निश्चिनुयामिति निवेदयति श्रीमद्वशंवदो—

नवलकिशोरकाङ्करः

स्वामी श्रीगोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य
गङ्गेश्वरधाम, गङ्गेश्वरमार्ग, करोलबाग
नई दिल्ली–५

६५

रामगञ्जः,
जयपुरम्–३
ता० २०–९–७६

परमश्रद्धेया विद्वद्वर्याः श्रीमन्तो मीमांसकमहाभागाः,

सादरमसकृन्नमामि ।

श्रीमतां २४–६–७६ तिथ्यङ्कितं पत्रं मयाऽत्र यथासमयं लब्धम् । उत्तरप्रदेशसर्वकारो वर्षेऽस्मिन् भवद्भिर्लिखितमृग्वेदभाष्यस्य भागद्वयं महाभाष्यस्य च तृतीयं भागं षट्सहस्ररूप्यकैः पुरस्कृतवान् इति महतः प्रमोदस्यायमवसरः । स्वीकरणीया मदीया शुभकामना । तदानीं रोगशय्यामधिशयानेन मया पत्रप्रेषणे विलम्बोऽकारि, तदर्थं जिह्रेमि ।

सम्प्रति प्राप्तेन १८–९–७६ दिनाङ्कितपत्रेण तु सोऽयमपरो मानसोल्लासकरः शुभोदन्तः समवगतो यद्भवन्तो २१–९–७६ दिनाङ्के प्रातर्दशवादने मद्भवनं समागमिष्यन्तीति । अहं दशवादनत एकादशवादनपर्यन्तं भवतः प्रतीक्षमाणोऽत्र स्थास्यामि । अहं तमपि दिवसं प्रतीक्षमाणोऽस्मि यदा भवन्तो राष्ट्रपति-पुरस्कारेण सत्करिष्यन्ते ।

शेषं कुशलम् ।

भवतां सुहृज्जनो
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीयुत युधिष्ठिर मीमांसक महोदय
वेदवाणीकार्यालय,
पो० बहालगढ,
जि० सोनीपत (हरियाणा)

६६

जयपुरम्
ता० २६-६-७७

पूज्यानां पादपद्मेषु, नतयो मे विलसन्तु।
दयादृशं प्रतिपलमलं, गुरवो मे वितरन्तु ॥१॥ (दोहा)

जयन्ति जगतां शश्वन्निःश्रेयस-परायणाः।
श्रीमद्गङ्गेश्वरानन्द - पादपद्म - रजःकणाः ॥२॥

वेदाम्बोधिमपारमद्भुतधिया बाढं मथित्वा पुन-
स्तत्तत्त्वामृतपूरमाप्य जगतां श्वःश्रेयसं वर्धितुम्।
पर्याप्तं प्रतिमन्त्रकं यदुपतेर्गाथा सुगीता हि यै-
र्नम्यन्ते मयका नतेन शिरसा ते स्वामिपादाः सदा ॥३॥

श्रीमतां स्वामिसम्राजां चरणोत्पलयोर्मम।
प्रणामाः कोटिशः सन्तु गुरुपर्वमहोत्सवे ॥४॥

विद्वज्जन जीवातुवर धृतमुनिजन - शुभवेष।
जय जय गङ्गेश्वर गुरो श्रीमन्! शुभ-धिषणेश ॥५॥

कृपाऽऽकूपारसञ्चार-सम्प्लुतान्तस्तलैर्हि यत्।
साहाय्यरूपं पीयूषं वितीर्णं मे तदद्भुतम् ॥६॥

सेयं शल्यचिकित्सा जाता भूयो द्वितीयवारं हि।
अधुना मन्ये बाढं भविष्यति चिकित्सनं सफलम् ॥७॥

अजस्रं किन्तु मत्पीडां शोचन्ती गेहनी मम।
रक्तचापरुजाऽत्यन्तं पीडिता वर्त्ततेऽधुना ॥८॥

अतोऽमोघाशिषां वाचः सम्प्रेष्य कृपयन्तु माम्।
इदमेव हि साम्रेडं नामं नामं निवेदये ॥९॥

श्रीमतां वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्करः

म०म० वेद-दर्शनाचार्य
स्वामी श्री गङ्गेश्वरानन्दजी महाराज
वेदमन्दिर, कांकरियारोड, अहमदाबाद

६७

श्रौतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
ता० १०-८-७८

अयि गुरुसेवानिरते श्रीमति सीते समुल्लसत्प्रतिभे ।
स्मरति हि वृन्दावनतो नवलकिशोरकाङ्करो भवतीम् ।। १ ।।

सकलं कलयसि कुशलं स्वास्थ्यं च ते वर्धतेऽनघे चारु ।
अपि गुरुसेवाकर्मणि प्रमाद्यसि नैवेति विश्वासः ।। २ ।।

किं स्वर्णकान्ता विदुषी कुमारी
प्रादाद् भवत्यै न दलं मदीयम् ।
यत्राङ्कितं स्पष्टमवर्त्ततैव
संप्रेषणीयं मम वित्तमत्र ।। ३ ।।

गुर्वाज्ञयाऽसौ मम तद्धि पत्रं
त्वदन्तिकं नीतवती सुवर्णा ।
तथापि किं कारणमत्र जातम्
अद्यापि तत्पालनमेव नाभूत् ।। ४ ।।

विचार्य चेतस्यवचिन्त्य पूर्णं
पत्रोत्तरं तूर्णमिह प्रदेयम् ।
इत्येव भूयोऽपि विलिख्य पत्रं
समाप्यते काङ्करकोविदेन । ५ ।।

शुभेच्छुः
नवलकिशोरकाङ्करः

कु० श्रीमती सीता हरलालका
Flat No १०,
५८ डी रोड, चर्चगेट
बंबई-२०

६८

श्रौतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
ता० ३–१०–८०

मान्या डॉक्टर-विष्णुशर्म-सुहृदो ! भास्वद्विभा-भास्वराः !
श्रीमत्-पूज्यपदाब्ज-सद्गुरु-कृपाप्राप्त-प्रकर्षोदयाः ।
पत्रं प्राप्तमनेहसः सुमहतः श्रीमत्सुवर्णाञ्चितं
तन्नैजं शुभभागधेयमधुना मन्येऽत्र वृन्दावने ।। १ ।।

श्रीमतां स्वामिपादानां चरणोत्पलयोर्मम ।
प्रणामाः कोटिशोऽवश्यं विनिवेद्याः सुहृद्वरैः ।। २ ।।

भवतामथ सङ्केतं लब्ध्वा परित्यज्य सर्वकार्याणि ।
दिल्ल्यां भवतो निकषा ह्यकृतविलम्बः समेष्यामि ।। ३ ।।

मासस्येन[1] दिनाङ्के मध्यमेऽह्नि मङ्गले शुभे वारे ।
तत्रोपेत्य गुरूणां मोमोदिष्यामि[2] दर्शनं लब्ध्वा ।। ४ ।।

श्रीगोविन्दानन्दा दिष्टचा ते निरामयाः पूर्णाः ।
तेऽपि स्वामिप्रवराः सभाजनीयाः प्रणामैर्मे ।। ५ ।।

शुभमभिनन्दनपत्रं श्रीगुरुवर - प्रतिष्ठास्तर - स्पृष्टम् ।
दिव्यं लिखितं मयका तदपि तत्र दर्शयिष्यामि ।। ६ ।।

श्लोका अपि बहुलोकाः सन्दृब्धा ये गुरुवरानुद्दिश्य ।
तानपि समयं प्राप्य सोत्साहं श्रावयिष्यामि ।। ७ ।।

अनुकूलं शुभसमयं गुरुचरणानां यत्नतो वीक्ष्य ।
तानपि विनिवेदयतात्, श्रीमान् तदिदं समं वृत्तम् ।। ८ ।।

एवं निवेद्य नवलो विद्यावाचस्पतिर्भवद्बन्धुः ।
वृन्दावनमधितिष्ठन् याचते पत्रोत्तरं विष्णुम् ।। ९ ।।

वत्सा मेऽद्य सुवर्णा योज्या शुभाशिषां राशिभिर्नूनम् ।
तस्याः शोधनिबन्धः पूर्णो जातः कियानद्य ।।१०।।

येऽन्ये तत्र मुनीन्द्रा विराजन्ते श्रीभास्करानन्दाः ।
तानपि सोऽयं नवलः प्रणमतीति तेऽपि संसूच्याः ।।११।।

भवदीयो
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० विष्णुशर्मा शास्त्री दर्शनाचार्य
एम. ए , डी. लिट्.
गङ्गेश्वरधाम, करोल बाग, नयी दिल्ली-५

1. द्वादशतारिकायां 2. अत्यन्तं प्रसन्नो भविष्यामि ।

६९

श्रौतमुनिनिवासः,
बृन्दावनम्
ता० १०-१०-८०

वत्स प्रभाकर ! मनीषिमणे शुभंयो ! युष्मद्दलद्वयमवाप्तमहो मयाऽत्र ।
कार्यान्तिरावहितचित्ततया तदानीं नैवोत्तरं प्रहितमित्यति लज्जितोऽस्मि ॥१॥

श्रीस्वामि - गङ्गेश्वर - सन्निकृष्टाद् दिल्लीपुरीतोऽद्य समेत्य रात्रौ ।
विश्रम्य किञ्चित् प्रथमं मया तु तदुत्तरं प्रेष्यत एव मङ्क्षु[1] ॥२॥

सङ्गृह्य यात्राविषय - प्रबन्धं सप्ताहमध्ये प्रहिणोमि नूनम् ।
मज्जीवनोदन्तमलं भवन्तो जानन्ति तस्मान्न हि तं लिखामि ॥३॥

प्रकादमी चापि ममेतिवृत्तं मुद्राप्य सुप्राप्यमपि ह्यकार्षीत् ।
ततोऽपि गृह्णातु भवान्, तदेतद् बिभेम्यहं जीवनवृत्तलेखात् ॥३॥

उपस्थितिर्मे शिविरे तु दृश्यते ह्यसम्भवैवेति वितुन्नमानसः ।
यतस्तदानीं पुनराह्वयन्मुनि—दिल्लयामतस्तत्र मया गमिष्यते ॥५॥

तथापि सौविध्यकणं कथञ्चित् लब्ध्वा समेतुं प्रयतिष्यते मया ।
कुर्वन्तु कार्यं शिविरे भवन्तः साफल्यमीशो विकिरेदनल्पम् ॥६॥

अथ स्वयं जैपुरमध्य एव नारायणं सूचयताद् भवांस्तु ।
मन्ये, स साकं भवतैव तत्र गन्तुं प्रवृत्तो भविता सहर्षम् ॥७॥

भवदीयो
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० प्रभाकरशास्त्री एम. ए.
पी-एच० डी०, डी० लिट्.
साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य
संस्कृतविभागाध्यक्ष, राजस्थानविश्वविद्यालय,
शास्त्री सदन, खूँटेटा मार्ग, जयपुर

1—शीघ्रम् ।

७०

विद्यावैभव-भवनम्
सुमेरुकर्णमार्गः, रामगञ्जः,
जयपुरम्–३
ता० २–३–८१

श्रीमत्सु वन्दारु-मन्दार-गोविन्दपदारविन्द-मधुकरेषु श्रीमद्भागतकथा-पीयूषप्रवर्षणप्रवणेषु विद्वत्कुलविभूषणेषु तत्रभवत्सु "श्रीरासविहारीलाल" महाराजेषु समुल्लसन्तु मदीयाः प्रणामाः ।

श्रद्धास्पदाः,

इहायातेनास्मत्परममित्रेण भवद्भ्यश्च समधीतश्रीमद्भागतरहस्येन कथावाचनवाचस्पतिना गोस्वामिना श्रीमूलविहारिणा व्याकरणाचार्येण कथितो भवतां सन्देशो मयाऽविकलरूपेण पूर्वं लब्ध एव । सन्दर्भेऽस्मिन् श्रीमन्तोऽपि पुनर्यदा जयपुर–राजजनन्या स्वपतिदेवस्य श्राद्धावसरेऽत्र श्रीमद्भागवतीं कथां कर्त्तुं समाहूता अत्रायातास्तदा मामपि धन्यतां लम्भयितुं[1] ममातिथ्यमेकवारं स्वयकुर्वन्, मह्यं स्वल्पं सङ्केतमपि चाददुः । किन्तु दुर्दैवोपनतदुर्मतिरहं तदा न किमपि विचार्य स्वयमेव स्वपादयोः कुठारपातमकार्षम् । हन्त साम्प्रतन्तु कर्णाकर्णिकयाऽस्मत्कर्णकुहरं विच्छिद्य हृदयान्तःप्रविष्टा प्रतिपलं प्रत्यङ्गं चिच्छित्सतीयं[2] वार्ता यत् परमशान्त-नदी-कान्त-गम्भीरान्तःकरणा अपि ते कर्मणानेन नितान्तं दूयमानमानसाः सन्तो नेदानीं मयि पूर्ववत् स्नेहविप्रुषः प्रवर्षन्ति, न वापारया कृपया मामनुगृह्णन्ति, न स्निग्धं विलोकयन्ति च ।

वन्दनीयाः !

निश्चप्रचं मदमूढमतिषु विवेकितावासः कुतः सम्भवः ? अत एव कतिपयाक्षरशिक्षणलोष्टधिया मया सर्वथैव साम्प्रतमसाम्प्रत[3]माचरितम् ।

---

1. प्रापयितुम् । 2. छेत्तुमिच्छति । 3. अनुचितम् ।

तत्कार्यारम्भे न मया तत्रत्यं धर्माचरणं विहितम्, न स्थानीयकोविदकुलापवादश्चेतसि चिन्तितः, न च प्राचीनपरम्पराप्रवाह एव पालितः। अत एवेदानीमनुशयेना[1]नुपलमनुतपामि, अनुदिनमात्मानं निन्दामि, अहर्निशं शिरो विधूनयामि, अविरतञ्चात्मशेमुषीगर्वं नामशेषतां निनीषामि[2]। किमन्यत्, अतनु-दुरनुतपन-दहन-दन्दह्यमानो[3] युगसहस्रायमाणानिव वासरान् कृच्छ्रेणापगमयामि। किन्तु निर्गते सलिले किं सेतुबन्धनेन? यज्जातं तत्तु जातमेव। अधुना त्वनुतपनमेव शरणम्। अथवा क्षमायाचनं हि किल्बिषापमार्जनम्। अतो जयपुरस्थेनैव मया मनसा महेशस्य पुरो दुर्मति-विहित-दुरित-दूरीकरणाय क्रियतेऽयमञ्जलिबन्धः। निश्चयेन प्रह्वेषु निर्बन्धरुषो भवन्ति सन्तः। अवश्यमेवेमे मेऽपराधं मर्षयिष्यन्ति।

सत्यं मम्मन्यन्तां श्रीमन्तः, यन्नैव मया तेषां मनस्तोत्तुं तथाऽऽचरितम्, अनायासमेव तज्जातमासीत्। ज्ञानलवदुर्विदग्धतामेवात्र मे मम्मनतु भवन्तः। इदमप्यहं वावदीमि, एतदघनिवृत्त्यै त्ववश्यं भवदुपदिष्टेन विधिना तत्र यास्यामीति किमधिकं लिखामि।

भवतां वशंवदो
नवलकिशोरकाङ्करः

श्रीयुत पं० रासविहारीलालजी गोस्वामी
व्याकरणाचार्य
राधारमणजी का मन्दिर
मोहल्ला राधारमणजी, वृन्दावन

---

1. पश्चात्तापेन। 2. नेतुमिच्छामि। 3. [illegible] दह्यमानः।

७१

जयपुरतः
ता० २-४-८१

श्रीमत्सु धीर-धिषणावधीरित-धिषण-धिषणाभिमानेषु, सविशेष-शेमुषी-प्रकाशित-चतुराशावकाशेषु, वेदमूर्त्तिषु, गृहीतावतारेष्विव समस्त-शास्त्रसारेषु, सद्गुरु-स्वामिश्रीगङ्गेश्वरानन्दमहाराजेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

अर्चनीयचरणाः,

एषु दिवसेषु अहम् आत्मनश्चिकित्सायै जयपुरमेवाधितिष्ठामि। प्राथमिक्या शल्यक्रियया डाक्टरैः निर्णीतं यत् मम मूत्रनलिकाग्रन्थिः पुनः वृद्धिं गता, अतो बृहत्या शल्यक्रियया तस्याः पूर्ववत् उन्मूलनम् अत्यावश्यकम् इति। एतेषाम् अनेन निर्णयेन मम तु हृदयमेव कम्पते, यतः पूर्वमपि मम एतद्ग्रन्थिवृद्धौ सैव शल्यक्रिया अक्रियत डाक्टरैः। येनाहं श्रीमताममोघेन आशीर्वादेनैव मृत्युमुखमुपगतोऽपि स्वास्थ्यम् अलप्सि। श्रीमद्भिः प्रेषिताः गुटिकाः (यूरोकोलीन टेबलेट्स) अपि मत्कृते पीयूषकल्पा एव तदानीं जाताः। अस्तु। साम्प्रतं नान्यः पन्था विद्यते अयनाय। शीघ्रमेव शल्यक्रियायै चिकित्सालये (एस. एम. एस. हास्पिटले) प्रवेशं लप्स्ये, देवमूर्त्तीनां श्रीमतां शुभाशिषा च स्वस्थो भूत्वा सत्वरमेव श्रीसद्गुरुचरणानां दर्शनेन आत्मानं धन्यतां लम्भयिष्यामि इत्यपि विश्वसिमि।

मान्याः,

श्रीमतां पावनम् आदेशं माल्यमिव शिरसि निधाय गायत्रीकृते अस्यामपि अवस्थायां मया यत्नो विहितः, अज्ञासिषं चाहं सर्वतथ्यम्। कलितमुनिवेषः अस्याः पितृपादः मदीयं पत्रं गृहीत्वा येषां येषां पार्श्वे गतवान्, नैष महाशयः कमपि इदमकथयत् यन्मे पुत्री गायत्री बी.ए. परीक्षायां तृतीयश्रेण्यां समुत्तीर्णा वरीवर्त्तीति। अत एव तैः कथितं, काङ्करमहाभागाः यत्कथयिष्यन्ति तदेव वयं करिष्यामः। अर्थात् स्थानाभावेऽपि विशेषाधिकारेण इमां पी-एच० डी० कृते सञ्चेष्यामः इति। अत एव अस्याः पितृपादेन

वृन्दावने तिलोत्तमा (तिल्लू) पार्श्वे पत्रं विलिख्य प्रेषितं—"यदि श्रीसद्-गुरुदेवस्वामिनः श्रीमतः काङ्करमहाभागान् साम्रेडं साधिकारं च कथयिष्यन्ति तर्हि गायत्र्याः कार्यं निश्चितमेव सम्पत्स्यते– इति"। अस्तु।

यदा मयोक्तं यदेषा बी०ए० परीक्षायां तृतीयश्रेण्याम् उत्तीर्णा अस्ति, एम० ए० परीक्षायां च ५३% अङ्काः वर्त्तन्ते अस्याः, तदा ते विश्वविद्यालय-नियमपुस्तकम् उद्घाट्य माम् अदीदृशन् यत् पी-एच० डी० पदलिप्सुश्छात्रः एम० ए० परीक्षायां प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्णो भवेत् अथवा ५५% अङ्का भवेयुः। यदि स विद्यार्थी एम० ए० परीक्षायां ५५% अङ्केभ्योः न्यूनान् अङ्कान् लब्ध्वा द्वितीयश्रेण्याम् उत्तीर्णो वर्त्तते तर्हि तेन बी० ए० परीक्षायां द्वितीयश्रेण्यामवश्यमेव उत्तीर्णेन भाव्यम्- इति।

एवंविधे व्यतिकरे एषा कथमपि राजस्थानविश्वविद्यालयतः पी-एच.डी. पदं प्राप्तुं नार्हति। अत्रत्यानां विदुषामयमस्ति परामर्शः—चेदियं हृदयेन वेदान् पिपठिषति, पी-एच. डी. पदं च जिघृक्षति तर्हि एषा श्रेणीं सुधारयितुं पुनः अस्मिन् वर्षे एम० ए० परीक्षायां प्रविष्टा भवेत्। सर्वेषु पत्रेषु एकस्मिन्नेव वर्षे परीक्षां दातुं विश्वविद्यालयतः आज्ञां लब्धुं शक्नोतीयम्। कृते परिश्रमे चैषा निश्चयेन प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्णा भविष्यति, अग्रे श्रीमन्तः प्रमाणम्।

भावत्कः—
नवलकिशोरकाङ्करः

वेद-दर्शनाचार्य, महामण्डलेश्वर
स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज,
तिडके कॉलोनी, त्र्यंबक रोड, नासिक–२

जयपुरतः
ता० १६-४-८१

श्रीमतां वन्दनीयपादारविन्दानां वन्दारुमन्दाराणां श्रीसद्गुरुभगवत्पादानां पावनेषु चरणेषु कोटिशः सन्तु मम साष्टाङ्गप्रणामाः।

महनीया महान्तः सन्तः,

श्रीगोविन्दानन्दस्वामिनां सेवायां प्रहितं मदीयं पत्रं श्रीमतां कर्णातिथितां गतमेव स्यात्। वत्सा सुवर्णा अपि मत्पत्रम् अश्रावयद् एव।

मया पूर्वं सूचिताः श्रीमन्तो यदचिरादेव मम शल्यचिकित्सा भविष्यतीति। किन्तु यदाऽहं गतदिने चिकित्सालये प्रवेष्टुम् अव्राजिषं तदा मम शारीरिकीं परीक्षां विधाय ड्राक्तरा मां शल्यक्रियायै अयोग्यं घोषितवन्तः। यतः साम्प्रतं मम रक्तचापो नीचैर्गतो वर्त्तते, तेन हृदयदौर्बल्यमपि प्रतीयते। अत एकमासानन्तरं पुनरागन्तुं ते मामब्रुवन्। तावदमुकामुकमौषधं सेवितुं च अकथयन्। साम्प्रतमहं गृहे एव वर्त्ते। स्वस्थमपि चात्मानम् अनुभवामि। तन्मातिमात्रं मम कृते विचिन्त्य तपोऽनुष्ठानसंक्लिष्टामात्मनः शरीरयष्टिकां तोतुद्यन्ताम् श्रीगुरुचरणाः। लोकानां निःश्रेयसाय ब्रह्मायुष्ट्वं लभन्तां श्रीमन्तः। अद्य मया पूर्ववत् लेखनकार्यम् अपि पुनः प्रारब्धम्। नैव मया हस्तोपरि हस्तं धृत्वा त्यक्तकर्मणा स्थीयते। लेखनसामग्रीं सर्वां वृन्दावनतः सहैव अहम् आनीतवान् आसम्।

गायत्रीसम्बन्धे अत्रत्या अधिकारिणो यत् कथयन्ति, तत् अस्याः कृते समुचितमेव। अवश्यमेवैषा श्रेणीं सुधारयितुं पुनर्वर्षेऽस्मिन् एम. ए. परीक्षायाः अष्टसु पत्रेषु तिष्ठेत्। स्वल्पं श्रमं विधाय इयं साम्प्रतं प्रथमश्रेणीं लभताम्। अग्रिमवर्षे च पुनः निश्चितरूपेण पी-एच. डी.–प्रवेशाय प्रस्तुता स्थास्यति। परीक्षां दातुं विश्वविद्यालयप्रवेशप्राप्तिरपि नावश्यकी वर्त्तते अस्याः कृते। इयं कुत्रापि तिष्ठेत् जयपुरे, वृन्दावने, नासिके, मुम्बय्याम् अन्यत्र वा। अग्रे श्रीमन्तः प्रमाणम्।

परम् इदमपि न विस्मरणीयं यदेनां नान्यः कश्चन विश्वविद्यालय उपकुलपतेर्विशेषादेशं विना पी-एच.डी. परमोपाधिकृते शोध-प्रबन्धं लेखितुं स्वीकरिष्यतीति सूचयति—

भवद्वशंवदः
नवलकिशोरकाङ्करः

महामण्डलेश्वर वेद-दर्शनाचार्य
स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज
तुलसीनिवास, डी रोड, चर्च गेट, बम्बई-20

७३

जयपुरम्
ता० २६–४–८१

सौवर्णि सौपवर्णीव सुवर्णे ! वर्णनादृते ।
सद्गुरून् सेवमाना त्वं दीर्घमायुरवाप्नुयाः ॥१॥

वत्से ! पूर्वजनुः-समर्जित-तपोयोगाप्त-योग्याश्रये !
सम्प्रत्यत्र वितन्वती हृदयतो निश्छद्मसेवां गुरोः ।
"पी-एच. डी." पदवीं धरेति मनसा वाञ्छामि, नूनं तथा
वर्तेथाः कुशलं गुरोश्च कृपया वर्त्तेऽहमप्यत्र शम् ॥२॥

गायत्री तु कुमारिका कथमपि प्राप्तुं न योग्यास्त्यहो
"पी-एच्.डी." पदमित्यवादिषुरिहाध्यक्षाः सुराणां गिराम् ॥
वर्गे हन्त तृतीयके ह्युदतरद् "डिग्रीपरीक्षां, यतो
वृत्तं त्वेतदरुन्तुदं गुरुवरान् श्रीस्वामिनः श्रावयेः ॥३॥

श्रेणीसुधाराय तु वत्सरेऽस्मिन्
'एम. ए.' परीक्षां यदि दास्यतीयम् ।
श्रेणीं तथाऽऽद्यां समवाप्स्यते च
तदैव योग्या परिमंस्यतेऽत्र ॥४॥

अतः सखीं स्वां वद, धेहि नम्रतां
सकृत् स्वपाठ्यं विषयं विचिन्त्य च ।
श्रेणीं लभस्व प्रथमां कथञ्चित्
ततः "पि-एच्.डी." वरणं न दुष्करम् ॥५॥

किन्तु स्मारय तां त्वं विना विनयं विना च गुरोः सेवाम् ।
साफल्यं न हि लभते कोऽपि जनः प्रमादमाधाय ॥६॥

अतस्तया न सन्त्याज्यः सोऽयं स्ववसरः किल ।
श्रीमतां स्वामिपादानां कृपैवास्त्यत्र कारणम् ॥७॥

इदमपि निखिलं पत्रं संलग्नदलञ्च सद्गुरून् पूज्यान् ।
श्रावय सम्यक् तेषामुत्तरतश्च मां सूचयतात् ॥८॥

(दोहा वृत्तम्)

श्रीसद्गुरु - पदपद्मयोः, प्रणमनं मे वदतात् ।
अथ तेषाञ्च शुभाशिषा, सुधन्यं मां कुरुतात् ॥९॥

कु० सुवर्णा वेदशक्ति, एम. ए., वेदाचार्या
गुरुगङ्गेश्वरवेदधाम
तिडके कॉलोनी, त्र्यम्बक रोड, नासिक-2

शुभाकाङ्क्षी
नवलकिशोरकाङ्करः

७४

श्रौतमुनिनिवासः
वृन्दावनम्
ता० १०-३-८३

श्रीमन्तः समधिकसमादरणीयाः श्रद्धेया मेवाडमण्डलेश्वराः
श्रीमुरलीमनोहरशरणशास्त्रिमहानुभावाः !!

ॐ नमो नारायणाय ।

श्रीमतां पत्रं प्राप्तम् । श्रावितञ्च तन्निखिलनिगमागमावगाहिलोकोत्तरवैदुष्यान् श्रीसद्गुरुचरणान् । उदन्तमवगत्य महामण्डलेश्वराः श्रीसद्गुरुस्वामिनः परमममोमुदिषत । कथितं हि तैर्विशेषकारणवशादेवाद्यत्वे राजस्थानशेखरायमाणे मेवाडप्रान्ते विशेषतोऽपरपुरुहूतपुरे इवोदयपुरे भगवतो वेदस्य स्थापना न जातेति । साम्प्रतं श्लाघ्यतमोऽयं समयः, सुयोगसंयुक्तोऽयं क्षणश्चेत्यवश्यमेव तत्र वेदस्थापना भवेदिति ।

अतः श्रीमतां निश्चयानुसारं वृद्धावस्थायामप्यस्यां श्रीमन्तः स्वामिनो महाराजा मार्चमासस्याष्टादशदिने दिल्लीतः प्रातर्वायुयानद्वारा प्रस्थायाष्टवादने श्रीमद्भ्यो दर्शनमुदयपुरे वितरिष्यन्ति । स्वसुविधामनुसृत्य भवन्तस्तस्मिन्नेव दिवसे सायमथवा द्वितीयस्मिन् दिने प्रगे वेदस्थापन-कार्यक्रमं निर्धारयन्तु । समयः स्वल्प एवास्ति । पुस्तकाकाररूपेणावतीर्णो वेदभगवान् सहैवानेष्यते श्रीमहाराजैः । यदि प्रबन्धसौविध्यं भवेत्तर्हि वेदभगवतः शोभायात्राया अपि शुभायोजनं श्रेयसे भविष्यति लोकानाम् ।

सोऽयं वेदस्थापनायाः कार्यक्रमो यदि "नाथद्वारा" नगरे "काङ्करोली" पुर्यामथ "एकलिङ्ग" मन्दिरे चापि भवेत्तर्हि तदर्थमपि भवद्भिर्विचारो विधेयस्तत्सम्बन्धिनी सूचना चापि दिल्लीसङ्केततः प्रेषणीया ।

शेषं सर्वमन्यत् कुशलम् ।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

मेवाडमण्डलेश्वर
श्रीमुरलीमनोहरशरणजी शास्त्री
थलमन्दिर, सूरजपोल, उदयपुर

७५

जयपुरम्—३
ता० २—१०—८४

श्रीमत्सु वैदुष्यविभा-भास्वरेषु सुधीश्वरेषु सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्व-विद्यालयस्योपकुलपतिपदतः प्राप्तविश्रामेषु तत्रभवत्सु श्रीबदरीनाथशुक्ल-महोदयेषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः।

मान्याः,

मध्येदिल्लीनगरं गङ्गेश्वरधाममन्दिरमधिवसताऽस्मदनन्यसुहृदा डॉ० श्रीविष्णुशर्मशास्त्रिणा दर्शनाचार्येण श्रीमतामविकलः सन्देशो मत्पार्श्वे समायातः। तदनुरोधेनैवेदं पत्रं पठितुं भवद्भ्यः कष्टमदीयत।

अहं श्रीमतः पूर्णं परिचिनोमि लखनऊनगरेऽपि संस्कृताकादमी-पुरस्कार-वितरणोत्सवानन्तरं तत्र भवद्भिः सह मम चिरं विश्रम्भालापो विहितः। तत्कथं श्रीमन्तो विस्मर्तुं शक्यन्ते मया। भवन्तस्तु प्राणा इव मे प्रत्यङ्गं विराजन्ते।

अत्र जयपुर एवाहं स्वज्येष्ठतनयेनायुष्मता डा० नारायणशास्त्रि-काङ्करेण सह स्वामिश्रीगङ्गेश्वरानन्दोदासीनमहाराजानामभिनन्दनग्रन्थस्य सम्पादन-प्रकाशनादिकार्यं करोमि। सुविदिते "श्रीशङ्करआर्टप्रिण्टर्स" इति नाम्नि मुद्रणयन्त्रालयेऽत्रास्य मुद्रणं प्रचलति।

भवतां लेखद्वयं डा० श्रीविद्यानिवासमिश्रमहाभागैरेवागरानगरे समचीयत। तत्रैको लेखो मया स्वरूपचिन्तनेऽपरश्च वैदिकप्रज्ञायां प्रकाशयितुं निरचायि। सम्बन्धेऽत्र भवद्भिर्वीतचिन्तचित्तैर्भाव्यम्। प्रकाशिते ग्रन्थेऽवश्यमेव भवतां सविधेऽयं प्रेषयिष्यते।

श्रीसद्गुरवः सम्प्रति नासिकनगरे विराजन्ते। ते स्वस्थाः सन्ति।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

आचार्य श्रीबदरीनाथ शुक्ल
राष्ट्रपति-सम्मानित
भू० पू० संपूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयोपकुलपति,
वाराणसी।

७६

जयपुरम्
१६-५-८५

वत्से सुवर्णे ! परमार्चनीय--श्रीसद्गुरूणां कृपयाऽऽप्तविद्ये !
त्वमाप्नुया आत्ममनोऽभिलाषं याचेऽहमेवं मनसा महेशम् ।।१।।

हा हन्त हन्त प्रतिरोधहेतोर्न साम्प्रतं नासिकमागतोऽहम् ।
जिह्रेमि, याचामि गुरून् क्षमाञ्च दुर्दैवतः सर्वमिदं हि जातम् ।।२।।

त्वराऽस्ति चेत्-'शोधनिबन्ध'-कार्यं पूर्णं समं भूमिकया विधातुम् ।
तदा त्वमेवात्र समेहि वत्से ! ममान्तिके जैपुर एव शीघ्रम् ।।३।।

यतो मयाऽऽरब्धमिह प्रभूणां श्रीमद्गुरूणामभिन्दनस्य ।
ग्रन्थस्य सम्पादनकर्म भव्यं कथं तदायानि विहाय तत्तु ।।४।।

सर्वेऽत्र ते भ्रातर एव सन्ति सख्यो भगिन्योऽपि समा वसन्ति ।
प्रतीक्षते त्वामिह च त्वदम्बा चित्ते न सङ्कोचकणोऽपि कार्यः ।।५।।

चेत्त्वं समायास्यसि जैपुरेऽधुना सम्पन्नकार्याऽपि भविष्यसि ध्रुवम् ।
दिल्लीमुपेत्याथ करिष्यसि स्वयं सम्प्रस्तुतं ग्रन्थमिमं यथास्थलम् ।।६।।

ग्रन्थस्य ते द्राङ् 'मुखपृष्ठ'-मुद्रणं प्राक् कारयिष्यामि विना परिश्रमम् ।
तद्बन्धनं चापि मया विधास्यते कार्योऽत्र नैवाल्पतरोऽपि संशयः ।।७।।

मासे व्यतीते हि मया तु नासिके स्वागंस्यते तत्र, न ततोऽपि पूर्वम् ।
अतो विचारं कुरुताद्यथारुचि प्रतीक्षमाणोऽस्मि तवोत्तरं परम् ।।८।।

मान्या गुरूणां गुरवोऽथवाऽत्र कृतार्थयिष्यन्ति ययाऽऽज्ञया माम् ।
तथैव तत्कालमहं करिष्ये नाणोरणीयानिह संशयोऽस्ति ।।९।।

एषां गुरूणां पदपङ्कजेषु निवेदनीया नतयो मदीयाः ।
एतद्दयादृष्टिमवाप्य नित्यं सम्पादयामीह समस्तकार्यम् ।।१०।।

शुभेच्छुः
नवलकिशोरकाङ्करः

सुश्री वेदशक्ति सुवर्णकान्ता
एम. ए., वेदाचार्या
गङ्गेश्वरवेदधाम, तिडके कॉलोनी
त्र्यम्बक रोड, नासिक (महाराष्ट्र)

७७

जयपुरम्
२५-६-८५

श्रीमत्पूज्य - पदारविन्द - भगवद् - गङ्गेश्वरस्वामिनां
शुश्रूषानिरत ! प्रवृद्धधिषण ! श्रीसद्गुरोराश्रय !
वेदाङ्गैः सहितेषु वेदविषयेष्वप्याप्तमेधोदय !
श्रीगोविन्दमुने ! नमोऽस्तु भवते वेदान्तिने स्वामिने ।।१।।

सम्प्रेषितं नासिकतो दलं यल्लब्धं तदद्यैव मया विलम्बात् ।
अनेन सार्धं प्रियवेदशक्त्या अप्याप्तमेकं शुभपत्रमत्र ।।२।।

ग्रन्थास्तु लब्धास्त्रिगुणा हि सप्त चतुर्गुणाः षण्ण मया गृहीताः ।
तत्प्रेषकं सर्वमिदं तु पृष्ट्वा संसूचनीयोऽहं भवताऽविलम्बम् ।।३।।

तत्प्रेषकाणां सविधे मया तु ग्रन्थोपलब्धिः प्रहिता दलेन ।
नामान्यपि ग्रन्थचयस्य तस्य तत्रैव सम्प्रेषितवानहन्तु ।।४।।

सद्ग्रन्थमाला - कुसुमोद्गतानि षट्त्रिंशदेतानि हि पुस्तकानि ।
प्रकाशितान्यत्र किमद्य यावत् लिखत्वरं केवलमेतदेव ।।५।।

सुवर्णाया नाम्ना दशदिवसपूर्वं विलिखितं
दलं किं श्रीमद्भिर्नं हि नयनलक्ष्यीकृतमहो ।
यतोऽद्यत्वेऽप्यत्र प्रहितमथ नैवोत्तरमिति
प्रतीक्षां कुर्वाणो भवनमधितिष्ठाम्यविरतम् ।।६।।

लघ्वीं चिकीर्षामि न जीवनीं गुरोः
क्रोत्स्यन्ति मेऽस्या यत आर्यलेखकाः ।
द्वेषं तितंसामि[1] च नैव केनचिद्
अतो बुधा एवमिह ब्रुवन्ति माम्– ।।७।।

---

1. विस्तारार्थक-तनुधातोः सनि रूपम् ।

प्रकाशनीयो ननु पूर्वमस्याः संक्षिप्तरूपोऽपि गुरोरुदन्तः ।
तेनाल्पकाला अपि भक्तलोका द्रक्ष्यन्ति सोत्साहमिमं समादौ[1] ॥८॥

अतो विलिख्य प्रहितं मया हि संक्षिप्तवृत्तं गुरु-जीवनस्य ।
दृष्ट्वा भवान् स्वानुमतिं विधाय मां सूचयत्वेव विना विलम्बम् ॥९॥

पाश्चात्त्यवाण्यामपि जन्मवृत्तं श्रीसद्गुरूणां श्रुतिविग्रहाणाम्[2] ।
प्रकाशनीयं लघुरूपमत्र वच्मीदमप्येवमहं तु हृत्तः ॥१०॥

यतो गुरूणामभिनन्दनस्य ग्रन्थाधिराजोऽयमवश्यमेव ।
पाश्चात्त्यदेशेष्वपि यास्यतीति तद्वाच्यपि स्याद् गुरुजीवनीयम् ॥११॥

संक्षिप्ता जीवनी सेयं मुद्रिता कस्य नामतः ।
भविष्यतीत्यपि श्रीमान् सोसूचीतु[3] विचार्य माम् ॥१२॥

फोजदारोपनाम्नो सा मुम्बई-पूर्निवासिनी ।
भगिनी रतना देवी किमस्या लेखिका भवेत् ॥१३॥

यत एकोऽपि नास्त्यस्या लेखो ग्रन्थेऽत्र कश्चन ।
अथवा भवतु श्रीमान्, किमस्त्यत्र भवन्मतम् ॥१४॥

पत्रोत्तरप्रतीक्षायामधितिष्ठन् स्वमालयम् ।
भवन्तं त्वरयत्यत्र तदर्थं काङ्क्षरोऽन्वहम् ॥१५॥

नवलकिशोरकाङ्करः

स्वामी गोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य
गङ्गेश्वरवेदधाम, तिडके कालोनी, त्र्यंबक रोड
नासिक–2

---

1. सर्वादौ । 2. वेदशरीराणाम् । 3. यङ्लुकि रूपम् ।

७८

जयपुरम्
ता० १-७-८५

श्रीवेदान्ताचार्य - स्वामि-गोविन्दानन्द ! सन्मान्य !
कुशलं कलयन् हि भवान् नमनं मे मनसि दाधेतु[1] ॥१॥

अर्चनीय-चरित,

व्यासाङ्घ्रिपूजा - दिवसे पवित्रे
श्रीसद्गुरूणां चरणोत्पलेषु ।
साष्टाङ्गपातं नमनं निवेद्य
श्लोका इमेऽप्यङ्घ्रियुगेऽर्पणीयाः ॥२॥

वैदिक-संस्कृत-हिन्दी-भाषासु मया विभिन्न-वृत्तैर्हि ।
परिगुम्फिताः कथञ्चित् सन्ति श्लोकास्त्रयस्त्वेते ॥३॥

(वैदिकभाषायाम्)

चतुर्नमो अष्टकृत्वोऽसकृद्
दशकृत्वः पन्यसा श्रीगुरुभ्यः ।
उशन्त आ ब्रह्मणा वर्धयन्तः
सं पेप्रीमो नाधमाना जगृभ्यात् ॥४॥

(संस्कृतभाषायाम्)

आचामीकृत - साङ्गवेद-गहनाकूपार-कुम्भोद्भवाः,
राकाशारद-शर्वरीश-विशद-प्रोद्यद्यशोवैभवाः ।
पाण्डित्य-प्रबल-प्रताप-विलसत्तेजःप्रकर्षोदयाः
श्रीमन्मान्यतमा जयन्ति गुरवो गङ्गेश्वरस्वामिनः ॥५॥

(हिन्दीभाषायाम्)

शुभ आराम वेदवाङ्मय के, धी-निधियों के पुर अभिराम,
अति आयाम भक्तिसरिता के, लोकहितैषी हैं निष्काम ।
भवन ललाम निगमनिगदों के, प्रभुचिन्तनरत आठों याम,
श्रीसद्गुरु के पदपद्मों में, कोटि कोटि साष्टाङ्ग प्रणाम ॥६॥

---

1. धारणार्थक-धाधातोर्लोटि यङ्लुकि रूपम् ।

एषां शुभाशिषां वाक्यैरमोघैरमृतोपमैः ।
अनुजाग्रहीतु[1] मामत्र विधायोपकृतिं भवान् ।।७।।

शुभाशीर्वादेन प्रथितयशसां पूज्यचरण—
प्रभूणां श्रीस्वामिप्रवर-गुरुगङ्गेश्वरसताम् ।
यशो वित्तं नित्यं भगवति च चित्तं स्थिरतरं
सजायो[2] लालभ्ये[3] जयपुरपुरस्थोऽपि सततम् ।।८।।

किं वेदशक्तिर्निज-शोधलेखं
सम्प्रेष्य दिल्ल्यामथ वीतचिन्ता ।
जातेति पृष्ट्वा ननु तां पुनर्मां
सोसूच्यतामत्र दयां विधाय ।।९।।

अन्यच्च—

शोध-निबन्धस्याद्ये मुखपृष्ठेऽदर्शयंस्त्वशुद्धि याम् ।
निश्चप्रचमथ किं तां शुद्धामकरोन्न वा वत्सा ।।१०।।

श्रीमत्सुरजनदास-स्वामिप्रवरा मासद्वयं यावत् ।
अजमेर एव नगरे वत्स्यन्तीति सद्गुरून् वदतु ।।११।।

अथ च—

मध्येविस्तृतजीवनीं सुरगुरुप्रस्पर्धिनां स्वामिनां
लोकं लोकमहं भवद्विषयक-स्थानानि योग्यान्यलम् ।
लेखिष्यामि समस्तवृत्तपटलं भावत्कमित्थं मया
सोल्लासं निरचीयतेति भवता वार्ता त्वियं मन्यताम् ।।१२।।

इह जयपुरमधितिष्ठन् श्रीसद्गुरुकृपाप्तजीवनः सोऽयम् ।
काङ्करनवलकिशोरः प्रतीक्षतेऽन्वहं दलं भवतः ।।१३।।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

स्वामी गोविन्दानन्दजी वेदान्ताचार्य
गुरुगङ्गेश्वरधाम
तिडके कालोनी, त्र्यम्बकरोड
नासिक—२ (महाराष्ट्र)

---

1. अनु + ग्रहधातोर्लोटि यङ्लुकि रूपम् । 2. पत्नीसहितः । 3. लभधातोर्यङि रूपम् ।

७९

जयपुरम्
ता० ४-७-८५

सन्मान्य-सुहृदः श्रीमद्-रामकृष्ण-महोदयान् ।
सस्नेहमभिवन्द्यायं निवेदयति काङ्करः ।।१।।

शर्माणो रामकृष्णा ! विबुधजन-समालम्बनाः श्रीसमृद्धाः !
को हेतुर्येन सोत्का अपि कृतिकरणे पण्डितानां भवन्तः ।
अस्मत्कार्येऽतिपुण्ये समधिकसमयोल्लङ्घनं चापि सोढ्वा
हस्ते हस्तं विधृत्य प्रतिहतवचनाः संस्थिताः सन्ति हन्त ।।२।।

मया प्रदत्तानि दलान्यनेकशः
किन्तूत्तरं नो भवतामवाप्नवम् ।
अत्रापि केनापि विशेषहेतुना
दुर्दैवतो मे भवितव्यमेव वा ।।३।।

पञ्चाशत्पुस्तकानां मे राष्ट्रवेदस्य मूल्यकम् ।
मह्यं प्रदातुं सन्मान्याः श्रीमन्तः कृपयन्त्वरम् ।।४।।

यद्यन्यः सज्जनः कश्चिद् विलम्बं तन्तनीत्यहो[1] ।
तदा सोऽप्यवबोद्धव्यो भवद्भिः सद्भिरादृतैः ।।५।।

मम स्नेहं विचार्यैव स्वकीये हृदयेऽधुना ।
श्रीमन्तो विनिवेद्यन्ते मयका दातुमुत्तरम् ।।६।।

शिक्षाधिकारिप्रवरैर्भवद्भि—
र्दत्तं निषेधात्मकमुत्तरन्तु ।
लब्ध्वा, विनिन्दन् निजभागधेयं
समाश्रयिष्ये ननु मौनमेव ।।७।।

श्रीमत्सदृक्षा अपि लेखितुं चेत्
पत्रोत्तरं मौनमुपाश्रयन्ते ।
न वा स्वलोकानपि नोदयन्ति
मनस्विता तर्हि गताद्य कूपे ।।८।।

1. 'तनु विस्तारे' इति धातोर्यङ्लुकि रूपम् ।

अनेहा[1] गतो हा लयं हन्त भूयान्
अरण्येऽथवा मेऽभवद् रोदनं किम् ?
शृणोत्येव कश्चिन्न ना[2] साम्प्रतं तु
दयन्तां दयन्तां दयन्तां भवन्तः ॥९॥

अन्यच्चेदमपि —

के केऽद्यावधि विबुधाः सन्त्यधिगतराष्ट्रपति-पुरस्काराः ।
इत्यपि सोऽयं स्वजनो भवतां जिज्ञासते सततम् ॥१०॥

विषयेऽस्मिन्नपि भवतः सविनयमलेलिखं सानुरोधं हि ।
अत्राप्युत्तरदाने कथं न समर्थाः श्रीमन्तः ॥११॥

प्रतिपलमुत्सुकनयनः पत्रं भवतां प्रतीक्षमाणोऽहम् ।
युगमिव दिवसमिहैकं गमयिष्यामि वच्मि सत्यं हि ॥१२॥

जयपुर-पुरमधितिष्ठन्निह नवलकिशोरकाङ्करः सोऽयम् ।
याचति कृपामपारां करुणावरुणालयान् भवतः ॥१३॥

उत्तराकाङ्क्षी
नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीरामकृष्णशर्मा महोदय
संस्कृतशिक्षा-सहायक-सलाहकार
शिक्षामन्त्रालय भारतसरकार,
शास्त्रीभवन, नयी दिल्ली ।

....

1. समयः । 2. नृ शब्दस्य प्रथमैकवचने रूपम् ।

८०

जयपुरम्–३
ता० ५–१२–८५

श्रीमत्सु सुविदित-सर्वधर्ममर्मसु समधिगत-समस्त-शास्त्रानुशीलन-शर्मसु निरतिशयसदाशयेषु पूज्यपदारविन्देषु तत्रभवत्सु स्वामिश्रीमदखण्डानन्दसरस्वतीचरणेषु समुल्लसन्तु मदीयाः शतशो दण्डवत् प्रणामाः ।

अर्चनीयचरणाः,

अहमिह कुशलं वर्ते । सन्देशो लब्धः । परमश्रद्धास्पद-श्रीमद्गङ्गेश्वरानन्दस्वामिवर्याणां वेदमूर्तीनामभिनन्दनग्रन्थ - सम्पादनमुद्रापणादि-सम्बन्धे श्रीमद्भिर्नातिचिन्तितैर्भाव्यम् । समधिकाः संस्कृतलेखास्तु भवतां समक्षं मध्येवृन्दावनं संशोधिता एव । उद्धवपुरीमहाशयस्य श्रीस्वामिपादाभिनन्दनसम्बन्धिनः श्लोकाश्छन्दोव्याकरणादित्रुटिबहुला आसन्निति तान् प्रकाशयितुं भवन्तो निषेधमकार्षुः । मुम्बय्यामपि तत्राभिनन्दनावसरे सर्वे विद्वांसः श्लोकानिमानाकर्ण्य तदालोचनां व्यतन्वन्नेव परन्तु प्रबन्ध-सम्पादकेनाग्रवालरामनारायणेन सानुरोधमुक्तं यदयमुद्धवपुरीमहानुभाव आगरानगरे लब्धप्रतिष्ठः कश्चन शिवालयस्वामी वर्त्तते, श्रीगङ्गेश्वरानन्द-महाराजानाञ्च परमभक्तोऽस्त्यतोऽस्य काव्यरचना प्रकाशनीयैवेति तदनुरोधात्ते श्लोकाः संशोध्य मुद्रणार्थं प्रेषिता मया । क्षन्तव्यं तदिदं मे धाष्टर्यम् ।

श्रीमदमीरचन्द्रकविराजेन प्रेषितं छन्दोमयं सद्गुरु-जीवनचरितमपि मया संक्षिप्तीकृतमेव श्रीमतामादेशानुसारम् । हिन्द्यां विलिख्य वाराणसेयेन श्रीवैजापुरकरमहोदयेन प्रेषिता बृहती जीवनी यथावद्गृहीता, नात्र संक्षिप्तीकरणमुचितं मन्ये ।

हिन्दीलेखाः प्रथमावृत्तौ डा० श्रीविद्यानिवासमिश्रैर्विहङ्गमदृष्टया निर्वाचिता एव, परं पुनरप्यहं क्रमशस्तान् संशोधयामि, संस्कृतलेखान् सम्प्रति श्रीमतां कृपाभाजनभूतोऽस्मज्ज्येष्ठतनय आयुष्मान् नारायणो विलोकयति, सत्यावश्यकत्वे संशोधनमपि चरीकरीति ।

हिन्द्यां पुस्तकाकाररूपेण लिखितो वैदिकवाङ्मयस्येतिहासलेखो भवदादेशानुसारं निष्कासित एव । नास्मिन् कापि मौलिकता । इतस्ततः

सङ्गृह्य सर्वा सामग्री प्रेषिता लेखकेन। महतो महीयांश्च वर्वर्ति। न मह्यमप्यरोचतास्य प्रकाशनम्।

ग्रन्थस्य चतुर्थांशभागो मुद्रितः। वृन्दावनमुपेत्य श्रीमतो दर्शयिष्यामि, अवश्यमस्य मुद्रणं विलोक्य भवन्तो मोमुदिष्यन्ति। चित्रचयनं दिल्ल्यां श्रीगोविन्दानन्दस्वामिनः श्रीमदानन्दभास्करस्वामिनश्च समक्षं करिष्यामि।

शेषं कुशलम्।

श्रीमत्स्नेहसंवर्धितो
नवलकिशोरकाङ्कुरः

पुनश्च—

अस्मल्लिखितं राष्ट्रवेदमनुशील्य बंबईतः श्रीमद्भिः स्वकीयेन शुभाशीर्वादेन सह या शुभसम्मतिः प्रेषिता तदर्थमहं भूयो भूयो नामं नामं भवतामाभारं मम्मनीमि।

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्कुरः

पूज्यचरण
श्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज
वृन्दावन

८१

चतुर्वेद-शोधसंस्थानम्
श्रौतमुनि-निवासः
वृन्दावनम्
ता० १०-९-८६

प्रेष्ठोत्तमाः श्रीमदुमेशशास्त्रिणो महाशयाः,
श्रीजगदीशशर्मसाहित्याचार्याभिनन्दनग्रन्थ-समितिसंयोजकाः,
बालाबक्सशोधसंस्थानं, व्यासभवनम्, जयपुरम् ।

अस्मदनन्यहृदयानां सुहृद्वर्याणां विशिष्ट-वैदुष्य-संश्लिष्टसौजन्यानां श्रीमज्जगदीशशर्म-दाधीच-साहित्याचार्याणामभिनन्दनग्रन्थ - प्रकाशनसूचना-पत्रं भवद्भिः प्रहितं परम्परयात्र समवाप्य कतिचनदिवसेभ्यो रोगशय्या-मधिशयानस्यापि मम मनोमयूरो नितान्तमनरीनृतीत् । अध्ययनकाला-देवैभिः सह मे सुखदं सौहृदं वरीवर्ति । एतेषां ज्यायांसः सहोदराः साहित्या-चार्याः सरलस्वभावाः श्रीवासुदेवशर्ममहानुभावा अपि मे सुख-दुःखादि-ष्वभिन्नताङ्गताः सखायः सन्ति । एतत्पूज्यपितृचरणानां वन्दनीयगुरुवर्याणां साहित्यवेदान्ताचार्याणां श्रीमद्विहारिलालशर्म - महाराजानां स्मारिका-ग्रन्थोऽपि मया सम्पाद्य मध्येवृन्दावनं मुद्रापितः । मया सहाध्ययनकाला-देवैषां समेषामात्मीयजनोचितव्यवहारो विद्यते ।

चुलुकीकृतसर्वशास्त्ररहस्या विदितवैदुष्या इमे हि प्रखरमति-जुषामपि विदुषामखर्वगर्व-परिहरणक्षमाः काव्यप्रकाशादि-सिद्धान्तग्रन्थाना-ञ्च व्याख्यातारः स्वपूज्यपितृपादेभ्य एव साहित्योपनिषदं विशदा-मासादितवन्तः । यथासमयं पुनर्निःशेषदर्शन-विमर्शन-भास्वर-वचोवैभवानां त्यागशीलानां प्रथिताभिधेयश्रीवीरेश्वरशास्त्रिद्राविडानां सविधे सविधि समधीतवन्तः समवशिष्टविद्याः, तदुपान्ते चाविरतं निरतास्तच्चरणपरि-चरणं कारं कारं तेषां मनस्तोषं हार्दिकानाशीर्वादांश्च गृहीतवन्तः । अमीषाममोघानामाशिषां राशिभिरेवैते जीवत्स्वेव तातपादेषु तेषां रुग्णाव-स्थायां जयपुर-महाराज-संस्कृतमहाविद्यालये परमयोग्यतया तत्पदमस्थायि-रूपेणाधितिष्ठन्तश्चिरकालमाचार्य-शास्त्रिपरीक्षार्थिनोऽपीपठन्, दिवङ्गतेषु तेषु समये समागते पुनस्तत्रैव महाविद्यालये स्थायिरूपेण नियुक्तिं प्राप्य यथाकालं पूर्वं स्वपितृचरणाधिष्ठितमेव साहित्यविभागाध्यक्ष-पदमलभन्त । राजकीयनियमानुसारं ततो विश्रान्तिवृत्तिमासाद्य सद्य एव

गीर्वाणवाणीगृह्यमाणे वनस्थलीविद्यापीठविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागे मानदसंस्कृतप्राचार्यपदमध्यतिष्ठन् ।

इमे सुहृद्वर्या राजस्थानशिक्षाविभागद्वारा सर्वोत्तमाध्यापकत्वेन पुरस्कृताः, भारतसर्वकारेण च राष्ट्रपतिपुरस्कारप्रदानेन सम्मानिता इत्यपि नास्त्यनल्पस्य पाण्डित्यस्य परिणामः । एतेषां विषये मदीयेन ज्येष्ठतनयेन चिरायुषा डा० नारायणशास्त्रिकाङ्करेण विहारिस्मारिकायां सत्यमेवेदं लिखितम्—

"शास्त्रे व्याकरणे प्रवीणधिषणाः साहित्यपारङ्गताः
साङ्गे वेदचतुष्टये कृतधियो लब्धास्पदा ज्योतिषे ।
न्याये साङ्ख्यनयेऽथ धर्मविषयेष्वप्युच्छलत्कौशलाः
सन्त्येते जगदीशशर्म - विबुधा विद्यावदग्रेसराः ।।"

इयमेवास्ति ममैतेषां शुभाभिनन्दन - ग्रन्थप्रकाशनकृते शोभनाभिकामना । भगवानेभ्यो नैरुज्यं पूर्णायुष्यञ्च प्रयच्छेदिति कामयते—

नवलकिशोरकाङ्करः

आचार्य उमेश शास्त्री एम. ए.,
साहित्याचार्य
बालाबक्स शोधसंस्थान, व्यासभवन,
दीनानाथजी की गली, चांदपोल बाजार
जयपुर ।

८२

सुमेरुकर्णमार्गः, जयपुरम्
ता० १५-११-८७

श्रीमत्सु धन्यातिधन्येषु वैदिकमूर्धन्येषु काशिकेयविद्वदग्रगण्येषु डा० श्रीमनोहरलालद्विवेदिवर्येषु समुल्लसन्तु सपुरस्कारा नमस्काराः ।

श्रीमतां कुशलदलं लब्ध्वा नितान्तममन्दां मुदं मम्मनीति मदीयं मनः । श्रीमतां विषये तत्रैव दिल्ल्यां मया श्रीगुरुचरणा असूचयिषत । निश्चप्रचं ते स्पृहयन्ति भवद्भ्यः । तेषां सविधे समायातेषु विद्वन्नामसु तु तैः समुचित एव निर्णयः करिष्यते, नात्र स्वल्पोऽपि संशयलवः । सदैतदर्थं वीतचिन्तैर्भवद्भिः स्थातव्यम् । कात्यायनश्रौतसूत्रमाश्रित्य यद्भवद्भिर्भाषायां विलिख्य प्रकाशनमारब्धं तदेवाविलम्बं सम्पादयन्तु भवन्तः । मया च दिल्ल्यां यथोक्तमासीत्तदनुसारं समये समायाते मुद्रितं तत् पुस्तकं निश्चयेन प्रेषयन्त्वत्र राजस्थान-संस्कृत-अकादम्याः पुरस्कारयोजनायाम् ।

असौ वेद-वेदाङ्गपुरस्कारवितरणोत्सवस्तु जन्मदिवस-महा[1]वसर एव सम्पत्स्यते मुम्बय्याम् । इतः पूर्वमेकवारं श्रीमन्तो म० म० गोविन्दानन्द-महाभागा अपि भवद्भिः सूचनीयाः, अहमपि पत्रं लेखिष्यामि ।

श्रीमतां सविधे "यात्राविलासं गद्यकाव्यं" "राष्ट्रवेद" श्चेति पुस्तक-द्वयं पूर्वं प्रेषितं मयका । तत्र भवति चैषापि पद्यद्वयी—

यात्राविलासमेतद्रसिकप्रवरा अधीत्य मे सुहृदः ।
शुभसम्मतिमविलम्बं मां निकषाऽत्र सम्प्रहिण्वन्तु ।।१।।

वेदाचार्य-मनोहरा बुधवराः सर्वत्र लब्धादराः
साहित्योपनिषज्जुषामपि सतामग्रेसराः ! सर्वदा ।
मान्यानां भवतां कराब्जयुगलेऽयं राष्ट्रवेदो नवः
सम्मत्यै मयकार्पितः सविनयं शश्वन्मिलिन्दायताम् ।।२।।

पुनर्निवेद्यन्ते भवन्तो यद्विलोक्यैनां पुस्तकद्वयीं शीघ्रमेव स्वकीयान् मनोभावान् सम्प्रेष्य कृतार्थयन्तु विद्वद्वर्याः श्रीमन्त इति प्रार्थयते—

डा० मनोहरलाल द्विवेदी
अथर्ववेदाचार्य, साहित्याचार्य, एम.ए., पी-एच.डी.
सेवानिवृत्त प्राध्यापक—
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, के० 24/76 रामघाट, वाराणसी—1

भावत्को
नवलकिशोरकाङ्करः

1. महः=उत्सवः ।

८३

जयपुरम्–३
ता० ३०-५-८८

अयि निःसीमसौभाग्यशालिनो महामनीषिणो डा० श्रीमण्डनमिश्र-मनस्विनो महाभागाः, सन्तु सङ्ख्यातीताः शुभाशिषां राशयः।

राजस्थानपत्रिकायामुत्तरप्रदेशसंस्कृत (अकादमी) सङ्गमतो भवद्भ्यः प्रदत्तस्यैकलक्षरूप्यकात्मकस्य पुरस्कारस्य शुभातिशुभवृत्तं वाचयित्वा मनसि कामप्यमन्दां मुदमलालम्भम[1]हम्। निश्चप्रचं समुचितं निर्णयं विधाय तदधिकारिभिः सुधीभिः "भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः" इति महाकविभारवेर्वचसः सत्यतायाः प्रत्यक्षप्रमाणभूतैरभूयत। इतः पूर्वं भवन्तो महामहिम-भारतराष्ट्रपतिभिरपि पुरस्कृता अभूवन्नेव। भूयो भूयः सोऽयं प्रतिष्ठासंवर्धकः पुरस्कारलाभो नाल्पस्य पाण्डित्यस्य परिणामः।

प्रेष्ठाः[2] श्रीमिश्रमहाभागाः,

भवन्तो न केवलं राजस्थानस्य भारतवर्षस्यैव वा, प्रत्युत समग्रस्य संस्कृतजगतो मस्तकं समुन्नतं समचेक्रीयिषत[3]। भवतां पुरस्कारप्राप्त्या साम्प्रतं भवदध्ययनस्थलीयं जयनगरी तु सविशेषमात्मगौरवं मम्मनीति[4]।

शतं जीवन्तु भवन्तः। दिने द्विगुणं रात्रौ चतुर्गुणञ्च सौभाग्यं जरीजृम्भतां भवताम्। अस्मिन् शोभनावसरे मदीया अखर्वंखर्वपराः शुभकामनाः परिगृह्णन्तु भवन्त इति कामं कामयते—

नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्रीमण्डनमिश्र मीमांसाचार्य
निदेशक, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान
G. N. 4 विशाल इन्क्लाव,
राजागार्डन, नयी दिल्ली–२७

1. लभ्धातोर्यङ्लुकि रूपम्। 2. अत्यन्तप्रियाः। 3. कृधातोर्यङि रूपम्।
4. मह्धातोर्यङ्लुकि लटि रूपम्।

८४

जयपुरम्–३

१२–४–८६

श्रीमन्तः साहित्य-पुराणेतिहासाचार्याः श्रीराकेशशास्त्रिवर्या डाक्टरोपाधिसंश्लिष्टाः ! नमो नमो भवद्भ्यः।

पत्रं लब्धम्। श्रीमन्तो गुरुकुलकांगडी-विश्वविद्यालयतो राजस्थान-शिक्षाविभाग-सेवायां प्रविश्य बाँसवाडा-नगरस्थ-राजकीय-स्नातकोत्तर-महाविद्यालये संस्कृतविभागाध्यक्षपदमधितिष्ठन्ति साम्प्रतमिति साम्प्रतमेव। अवितथमुक्तं हर्षेण–"क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः" इति।

श्रीस्वामि-गङ्गेश्वरानन्दमहाराजानामभिनन्दनग्रन्थो हरिद्वारे भवन्नयनातिथितामायातोऽरुचच्च[1] भृशं स भवद्भ्य इति शोभनं भागधेयं मदीयम्। भवतां लेखः परम्परयैव मां समया समायातोऽरोचिष्ट च स मह्यमिति प्रकाशितः। किन्त्वेतत्कृते नाहं तत्पुस्तकं भवद्भ्यो दातुं शक्नोमि। यतो यैर्लेखकैर्मम साक्षात्सम्बन्ध आसीत्तेभ्य एवाहमददां ग्रन्थम्। मम पार्श्वेऽपि केवलं तावन्त्येवाभिनन्दनपुस्तकानि समायातानि यावन्त्यपेक्षितान्यासन्नत्र। तानि च सर्वाणि यथास्थानं प्रहितान्येव। इदानीं पुस्तकमेकमपि नास्ति मत्सविधे। अतोऽहं विवशोऽस्मि तथा कर्त्तुम्।

दिवसेष्वेषु श्रीमन्तः स्वामिवर्याः श्रीगोविन्दानन्द-वेदान्ताचार्याः सद्गुरुभिः श्रीगङ्गेश्वरानन्दमहाराजैः सह दिल्ल्यामेव विराजन्ते। इमे श्रीगोविन्दानन्दस्वामिवर्या एव श्रीसद्गुरूणां सर्वविधकार्यसम्पादकाः सन्ति। अतो भवद्भिः स्वकार्यसम्पादनार्थमेभिरेव सम्पर्कः करणीयः। इमे स्वल्पैरेवाहोभिस्ततः प्रस्थास्यन्ते। अयमस्त्येतेषां पूर्णः सङ्केतः— गङ्गेश्वरधाम, गङ्गेश्वरधाम मार्ग, पार्क एरिया, करोल बाग, नयी दिल्ली–५।

---

1. "द्युद्भ्यो लुङि" इति सूत्रेण लुङि परस्मैपदमपि भवति।

अथवा– श्री रामनारायण अग्रवाल, शिवेन्द्र भवन,
दिल्ली गेट, आगरा–२ इति सङ्केतेन पत्रव्यवहारः करणीयः ।

अयि भौमवागीशाः संस्कृतविभागाधीशाः,

जिज्ञासुरूपेण परीपृच्छीमि किञ्चित्, नैवात्र स्वल्पमप्यन्यथा विचारणीयम् । यतो भवन्तः सम्प्रति स्नातकोत्तरमहाविद्यालयस्य संस्कृत-विभागाध्यक्षाः सन्ति । न श्रीमत्सदृक्षैर्विद्वद्धौरेयैरविचार्य किञ्चिल्लिख्यते । भवद्भिः स्वपत्रोपरिभागे संस्कृते स्वसङ्केतस्थलमलिख्यत– "शास्त्री-निलयम्" इति । अत्रायं सन्देहः समुदेति मानसे मे । शास्त्रीत्यत्र समस्त-वाक्ये दीर्घत्वं कथम् ? निलयशब्दस्य च नपुंसकत्वे का वाचो युक्तिः ?

विश्वसिमि, अवश्यं भवन्तोऽस्मत्संशयशूलमुद्धरिष्यन्तीति निवेदयति–

नवलकिशोरकाङ्करः

डा० श्री राकेश शास्त्री एम. ए, डी.फिल्.
साहित्य-पुराणेतिहासाचार्य
बी. ए. (आनर्स), लब्धस्वर्णपदक
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर-संस्कृतविभाग
राजकीयमहाविद्यालय, बांसवाडा (राज०)

८५

जयपुरम्
२४-६-८६

अयि परमप्रेयांसो विद्वन्मण्डल-मण्डनायमानाः श्री डा० मण्डनमिश्र-महाभागाः ! जीवन्तु भवन्तः शरदां शतम् ।

अद्य राजकीये (एस. एम. एस.) चिकित्सालये स्वरुजां चिकित्सां कारयित्वा ततो दत्तावकाशो यथैव गृहानुपागतस्तथैव सर्वप्रथमं भवत्सुहृदा चिरायुषा नारायणेन सोऽयं मानसोल्लासकरः शुभसमाचारः श्रावितो यद्दिल्ल्यां लालबहादुरशास्त्रि-संस्कृतविश्वविद्यालयस्य कुलपतिसिंहासने भवतामभिषेकः सञ्जात इति । अनुदिनं भवतां शुभमयसंवलितमभ्युदयवृत्तं श्रावं श्रावं परमां मुदं लालम्भीति मदीयं हृदयम् । सोऽयं लाभस्तु मनोरथानामप्यभूमिः साधारणधियां सुधियां तु । सत्यं हि यद्गुरुचरणा राष्ट्रपति-पुरस्कृताः पद्मभूषणपदालङ्कृताः श्रीपट्टाभिरामशास्त्रिसदृक्षा यशः-समृद्धा विद्यावयोवृद्धास्तपोमूर्त्तयः सन्ति, न तत्कृते किमपि दुर्लभम् । सत्यमुक्तं भारविणा " संसक्तौ किमसुलभं महोदयानाम् " इति । धन्यातिधन्यौ भवत्पितरौ, सौभाग्यशालिनी चेयं भवदध्ययनधरा राजस्थान-वसुन्धरा ।

अस्मिन् शुभतमेऽनेहसि स्वीकुर्वन्तु भवन्तो मदीयाः शुभकामनाः सभाजयन्तु चाशिषां राशिभिः पुत्रपौत्रादिगृहसदस्यान् । भवतामन्वहमयं[1] कामयमानो—

नवलकिशोरकाङ्करः

डा. श्री मण्डनमिश्र मीमांसाचार्य
कुलपति, लालबहादुर संस्कृतविश्वविद्यालय
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
G. N. 4 विशाल इन्क्लाब
राजागार्डन, नयीदिल्ली-27

समाप्तोऽयमाचार्य-नवलकिशोरकाङ्करस्य

पत्रसाहित्य-सङ्ग्रहः

—□—

1. अयं शुभावहम् ।



6